सहजानंद शास्त्रमाला

दृष्टि

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्रीसहजानन्द शास्त्रमाला

दृष्टि

रचियता—

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक—
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

द्वितीय संस्करण १०००]   सन् १९६२   [लागत २.६०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

'समीचीन दृष्टि कभी निष्फल नहीं होती'

http://www.jainkosh.org

महाराज श्री की किसी भी पुस्तककी प्रस्तावना लिखना सूर्यको दीपक दिखाने जैसा है ।

वर्तमान शतकके सर्वोच्च आध्यात्मिक संतकी प्रयोगात्मक उच्च स्तरीय शिक्षाका अत्यंत गहन मूल्यांकन उन्हींकी कृतियों व टीकाओंमें पाया जाता है । अपने ज्ञान दर्शन चारित्र को अपनेमें अपने लिये अपने द्वारा अनुभव करके कैसे आत्मसात करें और मरणपर विजय प्राप्त करके कैसे सुखी होवें ऐसी प्रयोगात्मक विधि अन्यत्र देखनेमें नहीं आती है ।

दृष्टिका अभिप्राय, जैसा कि इस पुस्तकके नामसे ही ज्ञात है उस चैतन्य तत्त्वको दृष्टि कराना है जिसके जाने बिना दुःख संततिका अंत नहीं हुआ । उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ।।

वास्तव में सत् (अस्तित्व) की गहराइयोंमें उतरकर ही सम्पूर्ण घटित होता है । क्षितिज पारदर्शक नहीं है क्षितिज तो आवरण है उसमें पूर्ण घटित नहीं होता । उससे आगे भी कुछ है जो है वह अनंत है उसमें असंख्यातका भेद डालना उपचरित है भूतार्थ नहीं है ।

'दृष्टि' वास्तवमें एक अद्भुत संमार्ग दिखाने वाली दृष्टि है, मैं संस्कृत नहीं जानता और श्री वीरेन्द्रकुमार नवयुगांतर प्रेस वाले भी इससे अनभिज्ञ हैं फिर भी उन्होंने परिश्रम करके कुछ अन्य जानकार लोगोंकी सहायतासे इसको छापनेका जो श्रम किया है उसके लिये मैं और हमारी कार्यकारिणीके सदस्य उनके आभारी हैं । विद्वद्वर्य्य बंधुओंसे निवेदन है वे संशोधन भेजकर अनुग्रहीत करें ताकि प्रकाशन शुद्ध हो सके । संशोधन भेजने वालोंके नाम आगामी संस्करणमें छाप उनका बहुमान करेंगे ।

डा० नानकचन्द जैन

अक्षय तृतीया २५-४-९३ सान्तौल हाउस, ठठेरवाड़ा, मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

॥ ओम् तत् सत् परमात्मने नमः ॥

दृष्टिः

मंगलाचरण

वर्द्धमानं श्रिया शुद्धया वर्द्धमानं नमाम्यहम् ।
वर्तते तीर्थमद्यापि यत्प्रसादात्सुखावहम् ॥१॥

स्वपररूपादानहाननिष्पाद्यात्मवस्तुत्वविधायिनिसद्विद्याविपरीतानाद्याविद्यासङ्गदोषोद्भूतविषयवासनाकल्मषकलुषितात्मनामाकुलानामसुमताञ्चातुर्गत्यापन्निवारणे किलाकुल्यावलिनिबन्धनविषयवासनान्तःसाधनाविद्याविनाशनप्रवणा सती दृष्टिः शक्ता । अतो दृष्टिं लक्षयित्वा तत्तुष्टिपुष्टि निमित्तं किञ्चिद्वक्तुं यते ।

अर्थ—आज भी जिनके प्रसादसे सर्व प्राणियोंके लिये सुखावह तीर्थ (धर्म शासन) विद्यमान है ऐसे शुद्ध निष्कलंक मोक्ष लक्ष्मीसे सुशोभित श्री महावीर भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं।

स्वरूप के ग्रहण और पररूप के त्याग से उत्पन्न, आत्म वस्तु के तत्त्व को प्राप्त कराने वाले सम्यग्ज्ञान से विपरीत जो अनादिपरम्परा से चले आये मिथ्याज्ञान के संसर्ग से उत्पन्न विषय वासना से दूषित हो रही है आत्मा जिनकी ऐसे चारों गतियों के जीवों के दुःख निवारण करने में, आकुलतावों को बाँचने वाली विषय वासना की अन्तरङ्ग कारणभूत अविद्या (अज्ञान) के नाश करने में पक्ष सदृष्टि ही निश्चय में समर्थ है। इसलिये ऐसी दृष्टि को लक्ष्य में ले कर उसके पोषण के निमित्त कुछ कहने को प्रयत्न करता हूं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यद्यपि चिदचिदन्तरप्रदर्शनोपलब्धप्रभावाया दृष्टे-र्विषयस्य सत्वं विना न क्षणमप्यास्ते कश्चिदात्मा ततश्चै-तस्यापद्यमानदृष्टिविषयवियोगाभावजसुखास्तित्वासंशय-त्वम् तथापि दर्शनमोहोदयानुदयोपलब्धकुत्सितसमीचीन-संज्ञया दृष्ट्या जीवलोकोऽयं दुःखसुखभाग्भवति ।

अतो निर्विसंवादमेतत्--दृष्टिः सुखम् दृष्टिर्दुःखम् दृष्टिः संपद्दृष्टि र्विपद्दृष्टि धर्मो दृष्टिर्धनम् दृष्टिर्दारि-द्रयम् दृष्टिः पुण्यं दृष्टिः पापमित्यादि बहुविधोपाधि-विशिष्टत्वेन विचित्रत्वात्तस्याः ।

यद्यपि समस्तयाकुल्यार्चिस्ततिदाहदंदह्यमानोऽयं समस्तो

यद्यपि चेतन और अचेतन के प्रभाव से आविर्भूत हुआ है प्रभाव जिसका ऐसी दृष्टि के विषयभूत ज्ञायक भाव के सत्त्व के बिना क्षण भर भी कोई आत्मा नहीं रहता है और इस ही कारण आजाने वाली दृष्टि के विषयभूत तत्त्व के वियोग के अभाव से उत्पन्न होने वाले, सुख के अस्तित्व में संशय न रहना चाहिये तो भी दर्शन मोह के उदय और अनुदय से प्राप्त है खोटी और असत्य संज्ञा जिसे ऐसी दृष्टिके द्वारा यह जीव लोक दुःख और सुख का पात्र होता है।

इसलिए यह बात विसंवादरहित है कि दृष्टि ही सुख है, दृष्टि ही दुःख है, दृष्टि ही संपत्ति है, दृष्टि ही विपत्ति है, दृष्टि ही धर्म है, दृष्टि ही अधर्म है, दृष्टि ही धन है, दृष्टि ही दरिद्रता है, दृष्टि ही पुण्य है और दृष्टि ही पाप है इत्यादि । क्योंकि नानाप्रकार की उपा-धियों से सहित हो जाने से दृष्टि नानाप्रकार की होती है।

यद्यपि आकुलता रूप अग्निके किरण समूहकी दाहसे जलता हुआ

Version 1

जीवलोकः सुखार्थी तथापि सत्यशर्मरूपोपायानभिज्ञो निर्विकल्प स्वसंवेदनसमुत्थसाम्यसुधारसास्वादविपरीतात्म-भिन्नपरात्म-विभ्रांतिमूलकपरावाप्त्यभिलिप्सुर्दुःखरूपो-पायावविन्दन् दैवाधीनसान्तदुरन्तविषयसेवनपरिणतिमेव सुखं मन्यमानोऽविनश्वरसुखसाधकसद्दृष्टिविरहितत्वेन परार्थित्वात्तदव्ययशर्मानर्हो भवति ।

आत्मार्थी त्वात्मानात्मसकलवस्तुयथात्म्यावगमसम्पन्न त्वेन विहतमोहमूलपरानुलोमप्रतिलोमपरिणमनोद्भाव्यहर्ष

यह समस्त संसार सुख चाहता है, तो भी सच्चे सुखके स्वरूप और साधनों से अपरिचित, विकल्परहित स्वात्मसंवेदन से उत्पन्न समता-रूपी अमृतके अभूतपूर्व स्वाद (अनुभूति) से विपरीत, निजात्मा से भिन्न परपदार्थों में पाई जाने वाली आत्मबुद्धि का भ्रम है मूल जिसमें ऐसी पदार्थों की प्राप्तिका इच्छुक, दुःखके स्वरूप और कारणोंको न जानता हुआ, कर्माधीन, तथा दुःख ही है परिणाम जिनका ऐसे अस्थिर विषयोंके सेवन की प्रवृत्ति को ही सुख मानता हुआ विनाश रहित सुख को सिद्ध करनेवाली समीचीन दृष्टिसे वंचित होनेके कारण परको चाहनेवाला होनेसे अनन्त सुख को प्राप्त करनेमें असमर्थ है।

परन्तु आत्मार्थी आत्मा तो निजात्मा और अपनेसे समस्त पर-पदार्थोंकी यथार्थ वस्तुस्थितिके ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण, मोहनीय जनित परपदार्थ विषयक अनुकूल तथा प्रतिकूल परिणमन से उत्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विषादाधिपत्यबुद्धित्वात् स्वात्मसमुत्थवीतमोहज्ञानदर्शन परिणतिमेयम नाकुलत्वलक्षणं सुख हितमनुचरन्नक्षयसुख भाग्भवति। अतस्तत्र रतिमुपेहि यत्तुष्टौ त्रैलोक्यंसम्पज्जरत्तणमिव निःसारमवभासते। निःसारावभासतस्तद्विषयिण्यभिलाषा निवर्तते, तन्निवर्त्तौ च भावुकाः सकलक्लेश योनिविकल्पजालानुद्भूतेः परमोपेक्षाजन्यामरनागनरेन्द्रानुपलभ्यमानपरमानन्दमयसाम्यभावामृतरसमास्वादयन्तः संसारक्षारापारपारावारपारगा भवंति।

होने वाले हर्षविषादात्मक परिणति के स्वामीपन की बुद्धि के नष्ट होजाने से आत्मोद्भूत मोहरहित ज्ञानदर्शन के शुद्ध परिणमनयुक्त अनाकुलता स्वरूप सुख ही सच्चा सुख है हित है ऐसा मानता व अनुचरण करता हुआ अक्षय अनन्त सुख का अधिकारी होता है। इसलिये हे आत्मन्! उस आरुचि में अनुराग कर जिसमें तृप्ति होने पर तीन लोक की सम्पत्ति सड़े तृण के समान निःसार प्रतीत होती है। समस्त वस्तु जाल के साररहित प्रतीत होने से तत्सम्बन्धी इच्छा की निवृत्ति होती है। इच्छा के निवृत्त होने पर निकट भव्यजन सम्पूर्ण क्लेशों के उदयस्थल विकल्प जाल के पैदा नहीं होने से देवेन्द्र नागेन्द्र नरेंद्रों को भी दुर्लभ, परम उदासीनता से उत्पन्न परमानन्द मय समताअमृत का आस्वादन करते हुए भव्य प्राणी संसार रूपी खारे, व अपार दुःख सागरसे पार होने में सक्षम होते हैं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुतः समस्ति सुखमभिलाषातिरोभावे। प्राणिनस्तु निर्मलचिदानन्दस्वरूपमस्पृशन्तः सद्वेद्योदयसंलब्धेंद्रिय-विषयपुष्टिविधाननिबंधने स्वांशविविक्ते परार्थे मन्यते, तत एव च तत्प्राप्तिसहायकं मित्रं तदवाप्तिविरोधकं च शत्रुं मत्वा त्योर्गविनाशविनाशविधौ कथमपि मृत्वा प्रयतंतेऽहर्निशं तदवाप्तयुपायं वा चिन्तयन्तः कुर्वंतश्चनंत-जन्मजलधौ निमज्जंति। एवमनादितः प्राणिनः किलाहार-भयमैथुनपरिग्रहसंज्ञासम्बंधवशात्तदर्हपरिणतिं वाञ्छंतः

वास्तविक सुख आशातृष्णाके नाश होने पर ही होता है। परन्तु संसारी प्राणी चिदानन्द स्वरूप आत्म परिणति को स्पर्श भी नहीं करते हुए साता वेदनीयके उदय से जन्म इन्द्रियों को क्षणिक तृप्ति करने वाली विषयोंकी पुष्टिमें ही जो कारण तथा आत्मा से नितान्त भिन्न है ऐसे परपदार्थ में सुख मानते हैं और उन इन्द्रिय विषयों की प्राप्ति के सहायक साधकों को मित्र और विरोध को शत्रु मानकर उनके संयोग और वियोग के करने में ही किसी भी प्रकार मर कर भी रात-दिन प्रयत्न किया करते हैं तथा उन्हें प्राप्त करने के उपायों को विचारते हुए व करते हुए अनन्त अपार इस संसार सागर में डूबते हैं।

इस प्रकार जीव अनादि से आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं के आधीन होकर उन परपदार्थोंकी अपनी इच्छाके योग्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वद्रव्यपर्यायव्याप्यव्यापकस्वभावत्वादर्थाणां तदनर्हपरिणतौ व्याकुलीभवंतः स्वात्मज्ञानविमुखाः संसरंति । गुरूपदेशशास्त्राभ्याससाधुसमागमशांतमुद्रावलोकनादिभिः कतमेनाप्युपायेन यद्येकवारमपि स्वपरांतरं जानीया तदायं ततः प्रभृति विहतविभ्रमजक्लेशः सन् सर्वापदामूलाध्यवसानभावोत्पादिविधिक्षपणायां सफलोद्यमो भवति ।

अतश्च भो आत्मन् ! यथाग्रदुर्लभं त्रसित्वसंज्ञित्वमनुष्यतार्यतासुकुलजिनेन्द्रोपदेशश्रवणावसरं प्राप्य मुधा जीवनं

परिणमनको चाहते हैं किन्तु पदार्थ स्वभावतः अपने ही द्रव्य पदार्थों में व्याप्य व्यापकभावसे परिणमन करते हैं अतएव प्राणी अपनी इच्छानुकूल परिणमनके अभाव में व्याकुल होते हुए आत्मविज्ञानसे विमुख होकर संसारमें परिभ्रमण करते हैं । यदि यह जीव गुरूपदेश, शास्त्राभ्यास, साधुसमागम, वीतरागदर्शन आदि में अनेक या किसी एक निमित्त से एक बार निजपर के भेद [भेद-विज्ञान] को जानले तो मोहजाल से उत्पन्न क्लेशकोनाशकर समस्त आपदावों के मूल अध्यवसानभाव को उत्पन्न करने वाले कर्मों के क्षय कर देने में सफल प्रयत्न वाला होता है ।

इसलिये हे आत्मन् ! उत्तरोत्तर दुर्लभ जो त्रस संज्ञी, मनुष्य आर्यक्षेत्र जन्म सुकुल जन्म, जिनेन्द्रोपदेश श्रवण के अवसर प्राप्त करव्यर्थ जीवन को मत गमा और समस्त क्लेश नाश करने में समर्थ अपनी

Version 1

मा यापय सकलक्लेश विनाशनसमर्थां स्वकीयां सतीं दृष्टिभाविर्भावय। किन्नावलोकयन्ते बालाः परबालीय-क्रीडासाधनं किञ्चिद्वस्तु स्वकीयं मत्वा तदवाप्त्यभावे रोदन्तः विलश्यंतश्च, तथैव स्वात्मभिन्नमनात्मानमात्मीय मवगम्य स्वेच्छानुलोभपरिणत्यभावे क्लिश्नासि। तद्विमुञ्च परेष्वात्मीयाध्यवसानम् समुपवस चात्मानम्। स्वात्मबोध-च्युतिमूला पीडा स्वात्मबोधादेव विनश्यति। कथमनन्तशो भुक्त्वोज्झितेषु पुद्गलेषु जड़ेष्वनुरज्य जडत्वं विभर्षि।

आत्मन्! सर्वार्थानां स्वेषु परिणतत्वेन कंचिदप्यर्थमन्यमुत्पा-पादयितुं भङ्क्तुं रक्षितुं संयोजयितुमाविर्भावयितुं वा च

समीचीन दृष्टिको प्रगट कर अबोधबालक किसी दूसरे बालक की वस्तु को अपनी मान कर उसे न पाकर दुखी होते हुए रोते हैं उसी प्रकार तू संसारी भी अपने से भिन्न पर पदार्थ को अपना मान व उसे न पाकर वा अपने प्रतिकूल उसका परिणमन देखकर दुखी होता है। इसलिये परपदार्थों में आत्मीय बुद्धि को छोड़ तथा निज स्वरूप में ही रमण कर। निजात्मबोधसे भ्रष्ट होने से उत्पन्न क्लेश आत्मज्ञानसे ही दूर होता है। अनन्तवार भोग कर छोड़े हुए जड़ पुद्गलों में अनु-राग कर क्यों स्वयं जड़ [अज्ञान] बनता है?

हे आत्मन् सम्पूर्ण पदार्थोंकी स्वाभाविक परिवृत्ति [परिवर्तन] होनेसे तू उनमें से किसी को भी अन्यथा करने में नवीन बनाने में, तोड़ने में, बचाने में, परस्पर मिलाने में समर्थ नहीं है। केवल कर्म

न शक्नोषि केवलं विधिविपाकजमोहादिनिमित्तौ स्वयोगोपयोगौ विधिबन्धन निबंधनौ विदधासि । न हि कुम्भकारः स्वशरीरात्कथमपि कुम्भमुत्पादयितुं शक्तः केवल कुम्भनिर्मितिनिमित्तां स्वशरीरचेष्टां विदधाति । कुंभस्य वस्तुत्वेन कुंभोपादानमृत्तिकायामेवोत्पादस्तथैवं चपुद्गलानामभिनवपर्यायाणांनानाव्यवहार्यावस्थापनानां तदुपादानपुद्गलेष्वेवोत्पादः ततस्तेषामवश्यंभाविनानापरिणमनवलोक्यनाकुलीभव । भावुक ! आस्तां तावत्सवार्थाणां स्वेच्छानुर्दात परिणमनम्,

---

विपाकसे उत्पन्न मोहके कारण अपने मनवचन काय की परिणतिरूप योग तथा भावपरिवर्तन रूप उपयोगको कर्मबन्ध का कारण बना रहा है। जिस प्रकार कुम्हार अपने शरीरसे किसी भी तरह घड़े की उत्पत्ति नहीं कर सकता केवल घट निर्माण में कारण भूत अपने शरीर की चेष्टा करता है, घड़े का उत्पादन तो वस्तुतः उसको उपादान कारणभूत मिट्टीमें ही होता है उसी प्रकार अनेक रूप से व्यवहार में आने वाली व विचित्र रूप में देखने वाली पुद्गलों की अनन्त पर्यायों की उत्पत्ति स्वयं पुद्गलों में ही होती है। इसलिये तू उनके अवश्यंभावी अपने अनुकूल प्रति(कूल) कुछ नाना परिणमभव देखकर स्वयं दुखी मत बना।

अभिभावुक आत्मन् ! जगत के समस्त चराचर पदार्थों का परिणमन स्वेच्छानुसार होना तो दूर रहा [अर्थात् उनका जब जिस प्रकार परिवर्तन होना होता है वह स्वयं ही होता है। उसमें उपादान कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कञ्चिदेक मप्यर्थंकश्चिदात्माकथमपिपरिणमयितुंनशक्तस्तस्मा-त्स्वाभिलाषपरिणमनयोर्व्याप्यव्यापकभावाभावादभिलाषानु-लोमनी परपरिणतिर्न भवतीतिवस्तुस्थितिभवगम्यनिर्विकल्प-विज्ञानघनपरमानन्दमयशुद्धस्वरूपप्रत्यनीकसविकल्पाकुल्युक-लक्लेशमूलाशुद्धपरिणतिबीजामभिलाषां व्यावर्तय। धन्यास्ते महाभागा ये प्राक्कृतसुकृतसत्कृतसुलभपञ्चाक्षविषयार्थानु-पभुज्यानुपभुज्यवा सर्वात्मदाहविधानैककार्यंतृष्णाजननोम-भिलाषां स्वशुद्धद्रव्यविविक्तमोहाद्यध्यवसानोद्धत्यया-भावजनिर्विकल्पविज्ञानपरिणतिरूपानन्तसुखवञ्चिकामभि-मन्यमानास्तस्यै जलाञ्जलिं दत्तवन्तः। धन्या च सा

उन पदार्थों के स्वयं के गुण धर्म हुआ करते हैं। किसी तेरो इच्छानु-सार जगत का परिणमन होने की तो कथा ही क्या ? किन्तु अपने पास के भी पदार्थ का अपनी इच्छानुसार कोई भी आत्मा परिणमन कराने में समर्थ नहीं है। इसलिये अपनी अभिलाषा और पदार्थों का परिण-मन इन दोनों में व्याप्य व्यापक भाव न होने से अभिलाषा के अनुसार पर पदार्थ की परिणति नहीं होती है इस वस्तुस्थिति को जानकर निर्बिकल्प विज्ञानघन परमानन्द मय शुद्ध आत्मस्वरूप से विपरीत जो सविकल्प तथा आकुलता ही है शरीर जिसका एवं क्लेशों का मूल जो अशुद्ध परिणमन उसकी बीज कारणभूत अभिलाषा को दूर कर।

वे महान् पुरुष धन्य हैं! जो पूर्वोपार्जित पुण्योदय से सुलभ पञ्चे-न्द्रियों के विषयों को भोग कर अथवा बिना भोगे, दूसरी सम्पूर्ण प्राणियों को संतृप्त करना ही जिसका प्रधान कार्य है, ऐसी तृष्णा को पैदा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सतो दृष्टिर्यतःप्रसादाच्छिवरमापरिणयनप्रयत्नपराः स्वसंवित्तिजसमरसमहाधनयोगिनो विपिने श्मसाने वाऽमरत्वप्रदानप्रवणचतुर्विधाराधनाराधामनुराधयन्तो वर्षाशीतातपजबाधाभिर्मर्त्यामर्त्यमर्तर्यग्विहितोपसर्गैः क्षुत्पिपासादिवेदनाभिर्मनागपि न खिदन्ति। ये किल भावद्रव्याहितद्विविध्यसंसारमवगम्य "प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्" इमां नीतिमनुसरन्तो वस्तुतोऽनादित्यक्तमपि भावतोऽपि संत्यज्य शिवं शिवाय शिवःसन् परिसेवन्ते, ते नु

करने वाली आशा को, अपने स्वरूप से भिन्न मोह आदि बिकारों के अभाव से उत्पन्न सहज निर्विकल्प विज्ञानस्वरूप अनन्त सुख को चुराने वाली मानते हुये उसे जलांजलि (त्याग करना) दे चुके हैं।

वह समीचीन दृष्टि भी धन्य है, जिसके प्रसाद से मोक्षसुख को वरण करने में प्रयत्नशील, स्वसम्वेदन जन्य समता रस है महान् धन जिनका ऐसे योगी जन एकान्त निर्जन वन में अथवा स्मशान में मुक्ति प्रदान करने में समर्थ ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप रूप चार आराधनाओं को भाते हुए, शीत उष्ण बरसात जन्य बाधाओं से तथा मनुष्य, देव, एवं तिर्यञ्चों द्वारा किये गये उपसर्गों से और भूख प्यासादि जन्य वेदनाओं के कारण जरा भी विचलित एवं खेदखिन्न नहीं होते हैं।

जो महापुरुष भाव द्रव्यात्मक द्विविध संसार को असार जानकर 'कीचड़ को लगाकर धोने की अपेक्षा उसका न छूना ही अच्छा है ? इस नीति का अनुसरण करते हुए, वास्तव में तो अनादि से पर पदार्थ

Version 1

श्लाघ्याः सन्त्येव परंच तेऽपि स्तुत्या ये प्राङ्मोहोदय-वैचित्र्यवशेन विविधकरणविषयानुपभुञ्जन्तोऽपि निमित्तं प्राप्य विरक्ता भवन्ति ।

धन्या हि स सुकौशलो मुनिर्यो निकेतनाकारपरिणताम्बुवाह विलयावलोकननिमित्तोपजातवैराग्यस्य मंत्रिव्रजाभ्याख्यानेन पुत्रोत्पत्तिप्रभृतिस्वीकृतराज्यभारस्य अथ सुतोद्भवश्रवणसनय एवाङ्गीकृतनग्रन्थ्यपदस्य स्वपितुर्महामुनेदर्शनाज्जातसंसार शरीरविषयानिर्वेदः प्रारब्धयौवनाऽनीप्सितस्वमानिनिगर्भस्थसुतोद्भवावलोकनो नियमित-बर्षायोगो ध्यानस्थः स्वामिपुतवियोगहेतुकार्तध्यानजातान्त-

---

छूटा हुआ ही है परन्तु अब से भी त्याग करके शिव स्वरूप सुख को कल्याण के लिये स्वच्छ परिणामी होते हुए सेवन करते हैं वे तो प्रशंसनीय हैं ।

किन्तु वे भी स्तुत्य हैं जो पूर्व सचित मोहोदय के वश अनेक प्रकार के इन्द्रियार्थों का सेवन करते हुए भी निमित्त पाकर विरक्त हो जाते हैं ।

गृह परिणत किन्तु क्षण भर में ही नाश हो जाने वाले मेघ को देखकर विरक्त, किन्तु मन्त्रिगण की प्रार्थना पर ग्रहण किया है राज्य भार को जिसने ओर पुत्रोत्पत्तिके समाचार पाते ही मुनि दीक्षा ले लेने वाले महा मुनिरूप, अपने पिता के दर्शन से उत्पन्न हुआ है संसार शरीर व विषयों से वैराग्य जिसका तथा यौवन अवस्था का जहाँ प्रारंभ हो चुका ऐसा पूर्णयुवा, अपनी पत्नी के गर्भ में स्थित शिशु के जन्म की ओर से उदासीन ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तकथाऽशुभभावसंपादनोपलब्धव्याघ्रभवया मातृचरया विदीर्यमाणोऽपि परमप्रकर्षप्राप्त वैराग्यवलेन क्षणमपि किञ्चिदपि स्वानुभवादच्यवमानः परमानंदसंदोहास्पदां परमनिर्वृतिं लेभे। धन्योहि स सहस्त्ररश्मि महाभागो या नर्मदानदीनीरनारिकेलिविधानविघटितनदी पुलिनद्वारस्त्र-वन्नरीप्रवाहवाधितेन जिनार्चनपरेण नर्मदामध्यस्थेन दशाननपितामहहननप्रत्ययचिकीर्षु रावणोनाजौ जितः पुनश्च विश्वनिरपेक्षबन्धुमहामुनिना सदुपदिष्टेन स्वतन्त्रीकृतः प्रशंसयाऽऽदृतो राज्यसपद्भोगाय स्वस्वसृ परिणयनाय

पूर्वभव में अपने पति और पुत्र के वियोग से उत्पन्न आर्तध्यान पूर्वक मर कर अशुभ परिणामों के वश व्याघ्रयोनि धारण करने वाली पूर्वभव की माता द्वारा स्वयं के चीर डालने पर भी उत्कृष्ट वैराग्य बल से क्षण भर के लिये भी अपने स्वरूप से विचलित नहीं होने वाला वह सुकौशल मुनि धन्य है जो इस प्रकार वैराग्य को प्राप्त होकर अलौकिक अवर्णनीय आनन्द की भंडार स्वरूप मुक्ति को प्राप्त हुआ।

वह सौभाग्यशाली सहस्त्ररश्मि धन्य है जो अपने पितामह [बाबा] का प्रतिकार करने की इच्छा रखने वाले तथा नर्मदा में रानियों के साथ जल क्रीड़ा करने से टूटे हुए नदी के तीर पर बहने वाले जल प्रवाह से बाधित और नर्मदा के बीच स्थित जिन पूजा में तत्पर अनन्तर कुपित हुए रावण के द्वारा युद्ध में पराजित हुआ किन्तु संसार के निरपेक्ष बन्धु महामुनि के उपदेश से पुनः स्वतन्त्र किया गया और उसी समय सत्य अनेक प्रशंसात्मक वाक्यों से सम्मानित होता हुआ छोड़ी हुई अपनी राज्य संपदाको ग्रहण करनेके लिये और रावण की लड़की को

Version 1

बहुशो निवेदितोऽपि पूर्वतोऽपि विपुलसंपदां करतलगतत्वेऽपि
http://sahjanandvarnishastra.org/
कल्पनाकलितकलामभिलाषां मूलतो विभेद्य मंगलमयीं जिनदीक्षामादृतवान् । भो आत्मन् ! विषयसेवननिबंधनां विषयसेवनोद्भूतां तृष्णापत्कुमतिकलिलपरिवाराभविचारितरम्यां दुर्विपाकां भोगभिलाषां कुट्टिनीं दूरत एव परित्यज्य स्वसंवेदननिमित्तां स्वसंवेदनोद्भूतां संतुष्टिसुमतिबोधिपरिवारामनन्तसुखप्रदां समतां भज । यथा यथा सुखलभ्या अपि पञ्चाङ्गविषया अनभिलषिता भविष्यन्ति तथा तथा सर्वशर्ममूला समताप्रीणास्यति, यथा यथा सा प्रीणास्यति तथा तथा दुरन्तस्वभावा विषया अरोच्या

विवाहने के लिए अनेक वार प्रार्थित होता हुआ, पहिले से भी विपुल सम्पत्ति को हाथ में आई होने पर भी कल्पना जन्य अभिलाषा को मूलोच्छेदन कर मंगलमयी जिनदीक्षा को ग्रहण करता भया ।

हे आत्मन् ! विषय सेवन में कारणीभूत तथा विषय सेवन से उत्पन्न, तृष्णा, आपत्ति, कुबुद्धि और पाप यही है परिवार जिसका, बिना विचार किये सुन्दर लगने वाली अत्यन्त खोटा है फल जिसका ऐसी नरक की कुट्टनी (भोग अभिलाषा) को दूर से ही त्यागकर आत्मसंवेदन की प्रधान कारण स्वात्म संवेदन से जन्य, सन्तोष सुबुद्धि ज्ञान ही है परिवार जिसका ऐसी अनन्त सुख को देने वाली समता का आश्रय ले । जैसे जैसे सुलभ भी पंचेन्द्रियों के विषय अप्रिय लगने लगेंगे वैसे वैसे ही समस्त सुखों के कारण समता तुझे तृप्त करेगी । जैसे २ तू समता रससे तृप्त होगा वैसे २ दुःख ही है परिणाम जिनका ऐसे इन्द्रिय विषय अरुचिकर प्रतीत होंगे । निश्चय ही विषयों के अरुच्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भविष्यन्ति। न खलु विषयाणामरोच्यत्वे काचित्क्षतिः प्रत्युत शाश्वतिकानाकुलत्वलक्षणानन्तसौख्यमयपरमब्रह्मत्वावाप्तिभवति। न चाननुभूतसाम्यरसास्वादानां ज्ञेयलुब्धानामबुद्धानामप्रियत्वे साम्यसुधासागरस्य महत्त्वं न क्षीयते। जाज्वलत्तृष्णाज्वलनज्वलन्तः प्राणिनो ये कथमपि वीभत्सुमोहगहनगहने वम्भ्रमन्तः साम्यसुधासिंधोस्तीरमपि सम्प्राप्य शिवरमावरमहाभागपीतस्वसंवित्तिजसुखामृताकीर्णरसलवमपि पिवन्ति ते जननजरान्तक क्षुत्तृषाविस्मयमयमोहभयारतिविषादनिद्राचिन्तादिदोषविविक्तममृतत्वेमयानन्तसुखभागिनो भवन्ति। हा कष्टम् हन्त यदनन्तज्ञानदर्शन सुखशक्तिमयत्वशक्तियुक्तत्वेऽपिसहजस्वरूपप्रतिष्ठापनायसत्सुखक-

---

होने पर कोई हानि नहीं होती है बल्कि नित्य व अनाकुलता ही है लक्षण जिसका ऐसे अनन्त सुखमय परमात्मतत्व की प्राप्ति होती है।

समता रस के स्वाद के अनुभव से रहित एवं ज्ञेय पदार्थों के लोभ में ही फंसे हुए मूर्ख पुरुषों के लिये अप्रिय होने पर भी समतामृत का महत्व कम नहीं होता। भभकती हुई तृष्णाग्नि में जलते हुए महा भयानक मोहाविष्ट संसार बन में चक्कर लगाने वाले भी प्राणी समतामृत सागर के किनारे तक पहुंचकर शिवरसुख को वरण करने वाले भाग्यवान पुरुषों द्वारा किया गया है आस्वादन जिसका ऐसे स्वसंवेदन जनित साम्यसुधारस की एक बूंद भी पी लेते हैं वे शीघ्र ही जन्मजरा, मरण, भूख, प्यास, विस्मय अरति खेद निद्रा चिन्तादि अष्टादश दोषों से रहित अनन्त अविनाशी सुख के अधिकारी होते हैं। हा ! खेद है कि यह आत्मा अनन्त ज्ञान दर्शन सुखात्मक अचिन्त्य असीम शक्ति युक्त होकर के भी निजस्वरूप को प्राप्त करने के लिये सुख की कथा की

Version 1

थामपेक्षतेस्वयं न तथा परिणमते । भो आत्मन् ! सुख तदेव यत्र रमणे काचिदपि बाधा न स्यादन्तोऽपि कदाचिन्न स्यात् । नहि स्वात्मभिन्ननिखिलपरद्रव्येषु रमणे बाधान्तयोरसद्‌भावः विभावरूपाविचारित रम्यविषयार्थसार्थाणां परिणमने तव स्वामित्वाभावात् । दृश्यमानं जगदेतत्किल देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्य चस्यात् किन्त्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां परितोनिःसारत्वात्कथं विश्वास्यं रम्यं स्यात् अतः प्राग्वदात्मविभ्रमजदुखनिमित्तभूतमिदं जगं मा भज किन्तु जगद्दाहविनाशकं लोकोत्तरं परमशरणं वीतदोषं कृतिनं

अपेक्षा करता है, स्वयं शीघ्र सुखी होने का परिणमन नहीं करता । हे आत्मन् ! सुख वही है जिसमें किसी तरह का व्यवधान न हो तथा जो नाश न होने वाला हो । निश्चित आत्मानुभव से जन्य सुख के अतिरिक्त समानजातीय अथवा असमान जातीय किन्हीं भी परपदार्थ के सेवन से उत्पन्न ऐसा कोई भी सुख नहीं, जो सावधि और सान्त (अंतसहित) न हो क्योंकि विभाव रूप अज्ञान में ही सुन्दर लगने वाले विषयभूत पदार्थों का अपने अनुकूल परिणमन कराने में तेरा आधिपत्य नहीं है । यदि वे सब तेरे आधीन होते तो अवश्य ही निरवधि एवं अन्तरहित सुख की कल्पना की जा सकती थी किन्तु ऐसा नहीं है । दृश्यमान यह निखिल जगत, देहादिक में आत्मबुद्धि रखने वाले बहिर्आत्मा जीवों के लिये भले ही विश्वासका कारण तथा मनोरम प्रतीत होता हो किन्तु आत्मोन्मुख विचार-धारावादी अन्तरात्मा पुरुषों के लिये भाव वाले क्षणिक अचेतन आदि अनेक हेतुवों से सार रहित होने से किस तरह विश्वसनीय एवं रमणीक हो सकता है ? किसी भी तरह नहीं । अतः पहिले की भांति भ्रम में पडकर अनन्त दुःखों की खानरूप इस संसार में रत न हो किन्तु संसार दावाग्नि को शमन करने वाले अलौकिक शरण प्रदान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परज्योतिर्मयं विश्वेदिनं चिदानंदमयं जगद्गुरुं सेवस्व। स्वस्वपरिणामोपार्जितकर्मविपाकमनुभुञ्जानाभिन्नभिन्नगति-सम्बन्धिद्रव्यादिचतुष्टयं विहायवर्तमानविपुर्वासिनो दृश्य-माना इमे स्वायुषां क्षीणत्वेनानादिक्ष्वभिनवविग्रहधारणाय झटिति गमिष्यन्त्येव। स्वसुकृतसविपाकनिर्जरामूला कल्पनाकलितकला संपदेयम् सुकृतसमाप्तौ भुज्यमानायुषः समाप्तौ च वियुक्ता भविष्यत्येव। पुनः क्वाशासे? आयु-श्चुलुकजलवद्वपुर्जलधिवेलावद्धषीकविषयार्थश्चपलावत्क्षण एव विनश्यति। पथि पथिकानां यथा क्षणमात्रं संयोगो भवति पुनर्वियोगोऽवश्यंभावो तथैवात्र बान्धवानां संयोगो-

---

करने वाले दोषरहित परम ज्योतिर्मय अखिल वस्तु के ज्ञाता चिदानन्दमय जगद्गुरु को सेवो। अपने अपने परिणामों से बांधे हुए पूर्व कर्मों के फल को भोगने वाले विभिन्न पहिली देवादि गति सम्बन्धी द्रव्य क्षेत्र काल भाव को छोड़कर दृश्यमान शरीर में निवास करने वाले ये समस्त जीव अपने आयु के समाप्त हो जाने पर नया शरीर धारण करने के लिये लोक की अनेक दिशाओं में अवश्य ही जायेंगे।

अपने पुण्य और सविपाक निर्जरा के बल पर प्राप्त की गई यह काल्पनिक सुख सम्पदा पूर्वोपार्जित पुण्य की समाप्ति अथवा भुज्यमान आयु कर्म की समाप्ति होने पर निस्सन्देह इस जीव से अलग हो जाएगी। फिर तू ही बता कहां विश्वास करता है। आयु चुल्लू के जल की तरह क्षण भर में खिर जाने वाली समुद्र की तरंग समान, और इन्द्रियों के विषय बिजली की तरह क्षण भर में ही नाश हो जाते हैं। मार्ग में एक साथ चलने वाले यात्रियों का संयोग जिस प्रकार एक क्षण भर के लिये होता है उसी प्रकार इस संसार में

Version 1

ऽध्रुव एव । विविधस्वादुव्यञ्जनभक्षणेन सुरभितकुसुमचंदनालकरणेन स्वच्छमनोरमजलस्नानेनातिलालितोऽपि देहोऽयं क्षणमात्र एव शीर्यते क्षणस्थितावपि विविधामयाधिष्ठानः सन् पीड़ानिबन्धनो वीभवीति । यत्र क्षेत्रसंबंधिनो देहस्थेयं कथा तत्रात्यन्तविविक्तां संपदं लुब्धसंकलितलक्ष्मीनाम्नीं को वर्णयेत् । आरम्भे संतापिनीं प्राप्तावतृप्तिकारिण्यन्ते दुस्त्यजेयं लक्ष्मीश्चक्रिणां पुण्यवतामपि शाश्वतीं नाभवत्तदाऽन्येषां केषां बद्धाविश्वास्या वीभविष्यति । अतो मुमुक्षो ? एतेऽत्रात्मविविक्तेषु परैश्वर्येषु प्राङ्ममतामुञ्च । नात्र जगतीक्रोड़े जन्मजरामरण विपत्क्लेशनिवारणेऽन्ये

का समागम भी अस्थायी एवं क्षणिक है । नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों से सुगन्धित चन्दनादि द्रव्यों के सेवन से, स्वच्छ मनोहारी जल स्नानादि से लालित एवं पोषित भी यह शरीर क्षण भर में ही विनष्ट हो जाता है । तथा जब तक साथ रहता है तब तक अनेक प्रकार की पीड़ाओं का आश्रय होता हुआ दुःख जनक ही होता है । जब आत्मा से एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध रखने वाले शरीर की यह दशा है तब प्रगट ही आत्मा से अत्यन्त भिन्न लुब्ध पुरुषों द्वारा जिसे लक्ष्मी नाम दिया गया है ऐसी बाह्य धनादिक सम्पत्ति का क्या कहना । प्रारम्भ में उपार्जन काल में संताप देने वाली, प्राप्त होने पर तृष्णा बढ़ाने वाली, अन्त में छोड़ते समय महान् कष्ट दायिनी यह लक्ष्मी जब चक्रवर्तियों के भी शाश्वत होकर नहीं रही तब दूसरों को कैसे विश्वसनी होगी । इसलिये हे मुमुक्षु ! पहिले आत्मा से भिन्न इन पदार्थों में ममता भाव का त्याग कर । इस संसार रूपी क्रीड़ा स्थल में जन्म, जरा, मरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केचिन्मत्यामर्त्येशा अपि क्षमा। चिरपरिचिता अप्येते बान्धवा सुहृदऽच भवितव्यतारूपमेव केवलमवलोकयितुं क्षमिष्यन्ते। न परत्र साकं पर्यटिष्यंति। सर्वथाशरणविहीनेऽत्र कीर्तेः प्रतिष्ठाया आश्वासनं मोहमहातमोविलसितमेव स्वोपार्जितपातकपाके केषां कीर्तिसम्मानादिना साहाय्यं प्रदत्तम्। वस्तुतो ह्यत्र स्वार्थान्धा स्वार्थसाधकाननुचितरीत्या प्रशंसानास्तेषां संसरणमूलमोहबंधे साधकतमा भवन्ति। अस्मादात्मान्? शुभाशुभोपयोगविलक्षणतार्तीयकावस्थान्तरणप्राप्तस्वोपयोग शरणं व्यवस्य स्वमनस्तदिरेभ्यो द्रव्यान्तरेभ्यः प्रच्याव्य स्वोपयोग एव रति-

---

सम्बन्धी क्लेश निवारण करने के लिये अन्य बड़े-२ महनीय पद के धारी इन्द्र नरेन्द्रादिक भी समर्थ नहीं हैं। चिरकाल से साथ रहने वाले ये बन्धु बान्धव मित्र आदि कर्माधीन होने वाली तेरी सुख दुःखात्मक होनी (भवितव्यता) का अवलोकन मात्र ही कर सकते हैं उस में कमी वेशी नहीं कर सकते और न ही तेरे यहाँ से प्रयाण करने पर तेरे साथ ही जायेंगे। सभी प्रकार से शरण रहित इस गहन संसार बन में प्रतिष्ठा, आदर सम्मान कीर्ति, प्रशंसा आदि की अभिलाषा करना दुर्निवार मोहान्धकार की लीला मात्र है। तू ही बता! पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मोदय जन्य सुख दुःख के अवसर पर इन प्रतिष्ठा, सम्मान कीर्ति आदि ने किन-किन की सहायता की? वस्तु-स्थिति तो यह है कि अपने स्वार्थ साधन में तत्पर स्वार्थान्ध लोग दूसरों की झूंठी प्रशंसा कर उन्हें भुलावे में डालकर उनके संसार का प्रधान कारण जो मोहनीय कर्म उसके बन्ध होने के ही साधक होते हैं। अतएव हे आत्मन्! परनिमित्तक शुभाशुभोपयोग से भिन्न स्वात्म जन्य आत्मानुभूति को ही शरण मानकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मुपैहि तमेव चानाकुलत्वलक्षणत्वनस्वभावतोऽसुखस्वभावाभावात्संतोष्यसंतोषसागरं विज्ञाय तत्रैव तृप्तिमपि भजस्व: ।

यथाहं तथेमे सर्वे संसारिणश्चातुर्गत्यक्लेशमुपलभमाना अनन्तद्रव्यक्षेत्राकालभवभावपरिवर्तनानि कुर्वन्ति । नात्रैवं केचित्परमाणव: सन्ति ये त्वयाऽनन्तशो न भुक्तोज्झितास्तदप्येतेषुजड़ेषु स्पृहालुर्भवसि । न चात्र त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशतरज्जुविष्कमभायां त्रिजगत्यां किञ्चित् क्षेत्रमस्ति यत्र प्रदेशानुक्रमेणाप्यनन्तश: पर्यायेण न जातो न मृतश्च हो कष्टम् तदपि यत्किमपि क्षेत्रभवलोकयितुं गन्तुं तत्रै-

---

अपने मन को आत्मातिरिक्त पर पदार्थों से हटाकर आत्मोपयोग [निजानुभव] में ही दत्तचित्त हो। अनाकुलता स्वरूप, दु:ख मात्र से रहित, उस अपने निज स्वरूप को ही संतोष समुद्र जानकर उसी में तृप्त होकर रमण कर।

हे आत्मन् ! तू इस प्रकार चिन्तन कर। मेरी तरह ये समस्त संसारी जीव चतुर्गति सम्बन्धी नाना प्रकार के असंख्य क्लेशों को भोगते हुए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव भावात्मक अनन्त पंच परावर्तन करते है। तीन लोक में ऐसे कोई परमाणु नहीं बचे जिन्हें तूने अनन्तवार भोग-भोग कर छोड़ा न हो। आश्चर्य है ! जो तू इन जड़ पदार्थों में इच्छा रखता है ! तीन सौ तैंतालीस घनराजू प्रमाण इस तीन लोक में ऐसा जरा भी क्षेत्र नहीं है जहाँ अनुक्रम से तू अनन्तबार जन्मा तथा मरा न हो। महान् खेद है ! जो तू इस जगत के किसी भी क्षेत्र के देखने की वहां जाने की तथा उत्पन्न होने की दुर्भावना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बोत्पत्तुं दुर्वाञ्छसि। नात्रानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीमय-कल्पकालसमूहलक्षणेऽतीते काले कश्चित्कल्पसमयः यदा त्वमनन्तशो न जातो मृतः। न च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमैक-त्रिंशत्सागरोपमा त्रिपल्योपमा वा काचिद्भवस्थितिरायुः-स्थितिर्वा या गतिक्रमेणैकैकसमयवृद्धिक्रमेणाप्यनन्तशो न प्राप्ता। तथा च संसरणनिबन्धनपरिणामस्थानानि चैकैकाविभागपरिच्छेदवृद्धिक्रमेणोत्पत्तावनन्तशोलब्धानि। तथापि दुःख हेतुकानितानि तान्येव निमित्तानि लोलुभ्यसे। अथवा निगोद शरीरेभ्योऽल्पसमय त एव प्रत्यग्भवनस्य संभवनदशायामप्येतद्धि निश्चितमेव यत्सिद्धांतप्रतिपादित-

---

करता है। न ही अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समूह स्वरूप कल्प काल प्रमाण अतीत काल में एक क्षण भी ऐसा बचा है। जब तू अनन्तबार पैदा न हुआ हो और न मरा हो। तथा ३३ सागर अथवा ३१ सागर प्रमाण एवं ३ पल्य प्रमाण ऐसी कोई भी भव स्थिति अथवा आयुस्थिति शेष नहीं बची जिसे नरकादि चतुर्गति क्रम से तथा समयवृद्धि क्रम से तूने प्राप्त न किया हो। संसार के कारण भूत जो अनन्त परिणाम स्थान हैं उनमें से एक भी ऐसा परिणाम नहीं बचा जिसे तूने एक अविभाग प्रतिच्छेद की वृद्धि क्रम से अनन्तबार प्राप्त न किया हो। तो भी दुःख के उत्पादक अनन्तबार भोगे हुए उन्हीं कारणों के लिये लोभ करता है उन्हें अपनाना चाहता है। अथवा निगोद शरीरों में से थोड़े ही समय से निकलने की संभावना की दशा में भी यह तो निश्चित ही है कि सिद्धान्त में कही गई रीति के अनुसार अनन्त पंच परिवर्तनों की

Version 1

रोत्थाऽनन्तपञ्चपरिवर्तन मुखेन देवै: विज्ञापितोऽनन्तकाल: क्लेशं भोजंभोजं नि:सारित: । हे आत्मन् ! यथाऽऽत्मातिरिक्तसर्वार्थसार्थाणां परिणतौ तव स्वामित्वं न वर्तते तथाऽऽत्मपरिणतावेषामर्थाणामपि स्वामित्वं नास्ति । मुधा विवशतामनुभवसि । नहि कश्चिदर्थस्त्वां प्रेरयति यन्मां स्पर्श मां रस मां जिघ्र मां पश्यमां शृण मामनुरज्यस्वेति । त्वमेव स्वबुद्धिदोषेण प्राग्विदितभावाविशुद्धिबद्धविधिभैरविपाकसमये तानिष्टानिष्टान्वा संकल्प्य स्वतंत्रतां क्षपयसि अतो द्रव्यान्तरस्य द्रव्यान्तरेणोत्पाद्य स्वभावोच्छेदाभावात्स्वविनाशं स्वोन्नतिं वा स्वपरिणामेनैव निश्चय-

---

शैली से व्यतीत होने वाला सर्वज्ञ देव के द्वारा बताया अनन्तकाल क्लेश को भोग भोग कर निकाल दिया।

हे आत्मन् ! जिस प्रकार आत्मातिरिक्त समस्त पदार्थ समूह के परिवर्तन में तेरा हाथ अथवा प्रभुत्व नहीं है उसी प्रकार निजपरिणति में भी तेरे से भिन्न इन परपदार्थों का आधिपत्य या बटवारा नहीं है। व्यर्थ ही तू विवश हो रहा है। निश्चय ही, कोई भी पदार्थ तुझे ऐसी प्रेरणा नहीं करता कि 'तू मुझे छू मेरा स्वाद चख, मुझे सूंघ, मुझे देख. मुझे सुन और मेरे से अनुराग कर। तू स्वयं ही अपनी अज्ञानतावश पहिले किये हुए परिणामों की अविशुद्धि से बद्ध हुए कर्मों के विपाक काल में उन पदार्थों को इष्टानिष्ट मानता हुआ अपनी स्वतन्त्रता का नाश करता है। अतएव एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य द्वारा उत्पाद अथवा उच्छेद नहीं होता, अपने द्वारा ही अपनी उत्पत्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दृष्टया व्यवस्थ निष्कलङ्कपरमशांतपरात्पर—विज्ञान-दर्शनसुखशक्तिमयस्वरूपाद् विचलने परद्रव्याश्रयमूलकपा-च्यमानाध्यवसानप्रवृतिनिवृत्तिलक्षणं यत्नं विधेहि । अन्य-थाऽस्मिनशरणेसंसारे यत्किमपि निमित्तं प्राप्य त्वमेव केवलं व्याकुलीभवन् वम्भ्रमिष्यसि । न ह्यन्येन चिता कृतं कर्मान्यो भुक्ते सविपाकनिर्जरणैककार्यस्य कर्मोद-यस्य वृन्ते वृन्ताद्विश्लष्टस्यफलस्येव प्राक्सम्बन्धेचित्येव-प्रभावकत्वात् । लोकेऽपि विस्फुटमवलोक्यत एव ज्वर-जर्जरितशरीरः कश्चित् स्वार्थविषयोपभोगसिद्धिसाधनत्वेन पुत्रकलत्रादिभिर्बहुशोऽनुग्रहीक्रियमाणोऽपि स एव क्लिश्यते ।

और विनाश होता है ऐसा भली भांति निश्चय दृष्टि से निश्चित करके निर्दोष, परमशान्त सर्वोत्कृष्ट अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख बल स्वरूप अनन्त चतुष्टय मय अपने स्वभाव में दृढ़तापूर्वक अवस्थित रहने के लिये परद्रव्य का आश्रय है कारण जिनका ऐसे होने वाले अध्यवसान भावों की प्रवृत्ति की निवृत्ति हो जाना है स्वरूप जिसका ऐसे आत्मप्रयत्न को करो। अन्यथा निराश्रय शरण रहित इस संसार में जरा से भी निमित्त को पाकर दुखी होता हुआ अनन्त काल तक चक्कर लगाता रहेगा। दूसरे के द्वारा संचित कर्मों के फल को दूसरा नहीं भोगता है क्योंकि सविपाक निर्जरण ही है एक कार्य जिसका ऐसे कर्मोदय का "जैसे डंठल वियुक्त हुए फल का उस समय डठल में ही प्रभाव होता है" पहिले जहाँ सम्बन्ध था उस चेतन में ही प्रभावकपन होता है। लोक में भी स्पष्ट देखा ही जाता है, कि अपने स्वार्थवश परिचर्या में तत्पर स्त्री पुत्र कुटुम्बी जनादि के द्वारा अनेक प्रकार से सेवा शुश्रूषा देखभाल किये जाने पर भी ज्वर जर्जरित रोगों से पीड़ित कोई व्यक्ति तज्जन्य वेदना से वह अकेला ही पीड़ित होता है। कोई उसमें हाथ नहीं बटा सकता।

Version 1

न कश्चिदत्र विश्वास्यो यदसौ विपदि साहाय्यं विदधास्यति सर्वेषामेव प्राणिनां स्वहित स्पृहत्वात् परिणामानां च क्षणक्षणाभिनवपरिणमनशीलत्वात् ततो निर्विसवादमेतत् यदेक एवात्र जायते एक एव म्रियते एक एव क्लिश्यते। एक एव च जरापरिगतो भवति नान्यः कश्चित्वलेशलवमपि विभक्तुं शक्नोति। सर्वेषां परस्परतो विभिन्नत्त्व द्भवत्तायाश्च भवत्येव निश्चीयमानत्वात्। हे आत्मन् यदा त्वदुपार्जितविधिपाकवशेन संयुक्तं वपुरपि तव सहचरं न विद्यते नदापुत्रकलत्रमित्रादीनां साहचर्यस्य का कथा। इमे खलु विस्पष्टं परेस्विभिन्नाश्च सन्ति त्वत्परेषां देह-

किसी का भी यहाँ विश्वास नहीं किया जा सकता जो विपत्ति में सहायक हो सके। क्योंकि समस्त ही जीव अपना ही हित चाह सकते हैं और परिणामों में भी क्षण क्षण भर में अनेक प्रकार परिवर्तन हुआ करते हैं, अतः यह बलपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आज किसी भी कारणवश अनुकूल हुआ व्यक्ति कल भी इसी रूप में रहेगा। इसलिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि संसार में जीव अकेला ही जनमता है, अकेला ही मरता है अकेला ही दुख भोगता है। आयु की समाप्ति पर बुढ़ापे में उत्पन्न होने वाले दुखों को अकेला भोगता हुआ मरण को प्राप्त होता है। प्रिय से प्रिय आत्मीय से आत्मीय व्यक्ति भी उसके दुःख को बटाने में समर्थ नहीं हो पाता। क्योंकि समस्त प्राणी एक दूसरे से विभिन्न हैं और किसी की भी होनहार उस ही होने वाले में ही निश्चित है।

हे आत्मन्! जब स्वयं तेरे द्वारा उपार्जित कर्मोदय से मिला यह संयुक्त शरीर भी तेरा सहचर सहायक नहीं है तब तेरे से स्पष्ट नितान्त भिन्न स्त्री, पुत्र, मित्रादि का तो कहना ही क्या है? वे तो किसी भी प्रकार तेरे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्बन्धिनां भ्रातृपुत्रादीनां सुहृदां वपुषां कर्मणा विभावानाञ्च संयोगादेव चातुर्गत्यापत्संदोहं घोरे भमि गहने भवविपिने विस्मरन्नात्मानं बम्भ्रमंश्च मुधैवाश्नुसे। एष खलु त्वमेव भगवानात्माऽनाकुलत्वलक्षणसुखामृतसागरः कथं परेषां सुखदायित्वमान्मभ्रमेण विकल्प्य मुधैव चेक्लिश्यते तच्चेतय स्वात्मानमेव 'सुखस्वभावं विबुध्य स्वमहसा मिथ्याभावतमो निवार्य परेभ्यश्चेतोव्यावर्तय। परारम्भरक्षणसंग्रहेषु बहुशः सततं प्रयत्नशीलोऽपि भवन्नकदाचिदपि शांतिं प्राप्स्यसि केवलं पुद्गलकर्मप्रत्ययत्वेन जड़स्वाभावेषु चित्येव पर्यायरूपत्वेनावस्थि

अनुगामी या सहयोगी नहीं हो सकते। यह सब तेरे से स्पष्ट रूप में भिन्न हैं तू अपने से भिन्न इन देह से सम्बन्धित, माता पिता पुत्र, मित्र कलत्रादि के सयोग मात्र से उत्पन्न होने वाले चतुर्गति सम्बन्धी इस महान् घोर भीम भयावह दुख समूह को गहन संसार वन में अतिशय रूप से बार-बार भ्रमण करता हुआ अपने आप को भूलकर व्यर्थ ही प्राप्त करता है। यह तू ही तो अनाकुलता स्वरूप सुखामृत का भंडार भगवान् आत्मा है सो कैसे भ्रमवश परपदार्थों को सुखदायी मान व्यर्थ ही क्लेशित होता है। इसलिये अब भी चेत ! निजात्मा को ही सुख स्वभाव जानकर अपने मन से मिथ्या भाव को दूर कर परपदार्थों से अपने चित्त को हटा। आत्मातिरिक्त स्त्री पुत्र धनादि के संरक्षण एवं संग्रह में निरन्तर अनेक प्रकार प्रयत्नशील होता हुआ भी कभी भी शान्ति को प्राप्त नहीं होगा, केवल पुद्गल कर्म के निमित्त से होने से जड़ स्वभाव वाले तथा चेतन उत्पादन में ही पर्यायरूप से अवस्थित न होने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानत्वाच्चिदाभासेषु रागद्वेषाद्यध्यवसानेषु परिणम्य परिणम्य स्वरूपमुत्तया पररूपादानेनानाकुलत्वलक्षणपरमसुखस्वभावादात्मनत्त्वात्प्रच्युत्य स्वस्थिरस्वरूपशान्तिप्रत्यनीकजाज्वज्वलनस्थानीयाशांतिमेवावाप्स्यसि । ततः स्वस्थैर्यावाप्तये पुरा स्वो ज्ञातव्यो स्वश्चापीत्थं भूतो विज्ञेयो यत्र सति शाश्वतंस्थैर्यं भवति । न हि स आत्मा क्रोधादिभावेषूपलभ्यते तेषां दु:खफलत्वाद्दु:खहेतुत्वादशुचित्वाद्विपरीतस्वभावभावत्वादशरणत्वाच्च । क्रोधादय: किलाकुत्वस्वभावत्वादुखान्येवाकुलत्वोत्पादकत्वाच्चदु:खहेतव: । आत्मातु ज्ञायकैकस्वभावत्वेनानाकुलस्वभावत्वाद्दु:खफलस्तथा चाकु-

---

से चित् की तरह मालूम होने वाले रागद्वेषादि रूप अध्यवसानों में बार-बार परिणमन कर-कर आत्मस्वरूप के त्याग और पररूप का ग्रहण करने से निराकुल स्वरूप परम सुख स्वभाव आत्मत्व से च्युत होकर अपनी चिरस्थायिनी शान्ति की प्रतिपक्ष रूप धधकती अशान्ति अग्नि को ही प्राप्त होगा। अतएव अपनी स्थिरता को प्राप्त करने के लिये प्रथम अपनी आत्मा को जानना चाहिये वह भी ऐसी दृढ़तापूर्वक कि वह ज्ञप्ति एवं स्थिति शाश्वत बनी रहे।

निश्चय से वह आत्मा वैकारिक परिणामस्वरूप क्रोधादि भावों में नहीं प्राप्त होता क्योंकि वे सब दु:खविपाक, दु:खमूलक, अशुचि, आत्मविपरीत स्वभाव वाले तथा अशरणभूत हैं। क्रोधादिक अशान्तिमय होने से दुख ही है, अशान्ति के उत्पादक होने से दुख के हेतु हैं। इसके प्रतिकूल आत्मा ज्ञाता दृष्टा अनाकुल स्वभाव होने से दुख विपाक वाला, और आकुलताजनक न होने से दुख का कारण नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लत्वोत्पादकत्वाभावाच्चादुःखहेतुः । क्रोधादयो ह्यात्मनि कलुषत्वमेवोत्पादयन्तीति तेषां कलुषत्वसिद्धेशुचित्वं स्वयमेवयाति, स्वयं कलुषत्व स्वभाववत्त एव जले जम्बालवत्पङ्कबद्धा परस्मिन् कलुषत्वकरणयोगात् । पुद्गलकर्मनिमित्तोद्भूतत्वेन जड़त्वावच्छिन्नानवच्छेदिका इमे क्रोधादयः खल्वाकुलमयत्वाच्चिदाभासत्वं प्रकटयन्तीति विपरीतस्वभावाः भगवानात्मा तु स्वतः सिद्धत्वेनान्यद्रव्यादिनिमित्तानुद्भूतत्वात् ज्ञायकस्वभावः सन् ज्ञायकत्वमेव प्रथयन्थीत्यनन्यस्वभावः । क्रोधादयो हि किलापदभूतत्वेनापद्धेतुत्वाद्विपाकत्वाधिरोहणान्तरं स्थातुं तेन रूपेण त्रातुमशक्यत्वादा-

---

क्रोध मान माया राग द्वेष आदि आत्मा में कलुषता ही पैदा करते हैं तथा स्वयं कलुषता स्वभाव वाले हैं इसलिये उनके अशुचिपना, सदोषता स्वयं ही सिद्ध होती है। जैसे जल में काई अथवा कीचड़ से मैलापन अवश्य होता है। पौद्गालिक कर्मों से उत्पन्न, एवं जड़ता से ओतप्रोत ये क्रोधादि औपाधिक परिणमन आकुलतामय होते हुए भी इनमें जो चेतनाभास प्रतीत होता है या ये इस रूप में अपने को प्रकट करते हैं यह सब इनकी विपरीत स्वभावता है। भगवान चिदानन्दमय आत्मा तो अनादि काल से स्वयं सिद्ध है, तथा अन्य, चेतनव्यतिरिक्त पुद्गलादिक परद्रव्यों से उत्पन्न नहीं हैं इसलिये वह अपने को सहज ज्ञाता दृष्टा रूप में जो उपस्थित करता है यह उसका निज स्वभाव है। निश्चय से क्रोधादिकों के दुख स्वरूप एवं दुखों के कारण होने से तथा उपभुक्त हो जाने पर (उनका परिणाम भोग लेने के पश्चात) उसी रूप में बने रहने में असमर्थ होने से, आत्मा की निरूपाधिक स्वाभाविक परिणति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्मस्वभावहिंसकत्वाच्चाशरण आत्मा तु पदभूतत्वनात्मसंपद्धेतुत्वादनाद्यनन्तं यावत्स्थीयमानत्वादत्मस्व भावस्थानगर्भत्वाच्च शरणमृतः। एवं सकलसुखपुंजात्मशुद्धस्वरूपादिमे क्रोधादिविभावा अत्यन्तविविक्ताः सन्त्येव सुनिश्चितमेतत्। अतो भो आत्मन् रागद्वेषमयेषु क्रोधादिभावेषु रागं मुञ्च। नहि कश्चित्परोऽर्थस्त्वां कथमपि प्रेरयितुं शक्यस्त्वमेव तस्य निमित्तत्वप्राप्य मुधाऽज्ञानेन विह्वलोभवसि। तव यदा कदा च प्राग्बद्धविधितीव्रविपाकात्कथमपि विविधेतस्था परिणतिः स्यात्तदापि त्व तत्परिणतिरागाभावस्थापिकया ज्ञानशक्त्याऽनन्तससारं जेतुं शक्त एव, ज्ञातुर्भ-

---

के घातक होने से अशरण (रक्षा करने में असमर्थ) है : किन्तु आत्मा निजपद होने के कारण आत्मसम्पत्ति ज्ञान दर्शनादि के हेतुभूत होने से तथा अनादि से अनन्तकालपर्यन्त रहने वाला होने से अपने ही स्वरूप के स्थानों में रहने से शरण भूत है। इसलिये सम्पूर्ण सुख समूहमय अपने शुद्ध स्वरूप से यह क्रोधादिक विभाव अत्यन्त भिन्न हैं यह निर्विवाद सिद्ध हो गया। अतएव हे आत्मा! रागद्वेषादिमय क्रोधादि परपदार्थों में बने हुये अनुराग को छोड। कोई भी परपदार्थ तुझे किसी भी प्रकार की प्रेरणा करने, परामर्श देने में समर्थ नहीं हैं। तू स्वयं ही उनके निमित्त को पाकर अज्ञानवश विह्वल होता है।

तुम्हारे जब कभी पहिले बांधे हुए कर्मों के तीव्र विपाक जैसे भी नाना प्रकार की विरुद्ध परिणति हो तो उस समय भी तुम उस परिणमन में राग के अभाव को करने वाली ज्ञान शक्ति द्वारा अनंत संसार जीतने में समर्थ होगे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गवतो विपुलमहिमत्वादन्यथा तत्संततत्यत्यन्ताविनाशेन मोक्ष एव दुर्घटस्ततश्च सत्प्रयत्नोऽप्युन्मत्तचेष्टितवत्स्यान्न च तयोर्दुर्घटत्वं वा स्वसंवेदप्रत्यक्षानुमानागमादिभिः सुप्रसिद्धत्वात्, अतश्चैतस्यां प्रावपदव्यां मोक्षं मोक्षोपायञ्चोपादेय विज्ञाय तत्सत्प्रयत्नं कुर्वाणमात्मान सफलक्रियं मन्यमानः सर्वविभावशून्ये निर्विकल्पे ज्ञायकस्वभावे परमे स्वात्मनि विश्रान्तिमुपैहि । अनेनैव विधानेन सर्वसौख्यसंपत्करः कर्मणां महान् संवरो भविष्यति । संवर एवात्मानं ज्ञानचेतनायां नावि संस्थाप्य अज्ञानिजनदुस्तोयसंसारसागरतीरं नेष्यति । संवरमन्तरेण संसारिणामनादितोऽपि कर्मनिचये

ही, क्योंकि ज्ञाता दृष्टा भगवान स्वरूप आत्मा की असीम महिमा है । अन्यथा पूर्वबद्ध कर्मों की सन्ततिका आत्यन्तिक विनाश होने से मोक्ष प्राप्ति ही असम्भव हो जायेगी । और फिर समीचीन प्रयत्न भी पागलों की चेष्टा की तरह हो जायेगा किन्तु मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है नहीं और न समीचीन प्रयत्न निष्फल हो सकता क्योंकि दोनों बातें स्वसवेदन प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदि प्रमाणों से भले प्रकार सिद्ध हैं ।

इसलिये इस प्राथमिक कक्षा में मोक्ष और उसके उपाय को उपादेय (ग्राह्य) जानकर उसके लिये प्रयत्नशील आत्मा को सफल जन्म मानता हुआ समस्त विभावों (विकारों) से रहित अपने परम पवित्र निर्विकार परिणतिमय आत्मा में विश्राम ले अर्थात् रमण कर । इसी विधि से सम्पूर्ण सुख सम्पत्ति को करने वाला कर्मों का महान् संवर (रुकना) होगा संवर ही आत्मा को ज्ञान चेतना रूपी नाव में बैठाकर, अज्ञानिजनों द्वारा मुश्किल से पार किये जाने वाले इस संसार समुद्र के किनारे लगा देगा अर्थात् उसे संसार से पार कर देगा । संवर के बिना संसारी जीव द्वारा अनादि काल से फल भोग पूर्वक

Version 1

सविपाकं निर्जीयमाणेऽपि संसार एव। मुक्तिमार्गे किल संवरस्यैवं महिमा यत्प्रसादादेव मुमुक्षवो मोक्षबाधकान् कर्मारातीन् संबाध्याक्षय सुखं प्रापुः प्राप्नुवन्ति, प्राप्स्यन्ति च। संवर किल स्वरसतः शुद्धभगवत्यात्मनि कार्माणवर्गणानां कर्मत्वाभवनलक्षणो निरोधः स च शुद्धात्मोपलम्भाद्भवति शुद्धात्मोपलम्भश्च परकीयभावापोहननिष्पाद्यः तदपोहनं हि स्वपरभेदविज्ञानमन्तरा न कथमपि निष्पाद्यम् भेदविज्ञानमपि नियतस्वस्वलक्षणनिर्ज्ञानमन्तरा न शक्यम्। अतो मुमुक्षो! रागद्वेषमोहलक्षणसंसारप्रमोचनाविफल-

---

कर्म समूह को खपाये (नाश किये) जाने पर भी संसार ही रहेगा। उसकी सत्ता से नाश नहीं होगा। बगैर संवर के नवीनकर्मागमननिरोधहेतु तथा संचित कर्म क्षपणमूलक संसारनाश होना मुश्किल है। मोक्षमार्ग में संवर का इतना अनुपम माहात्म्य है कि जिसके प्रसाद से मोक्षाभिलाषी जीव मोक्ष के प्रतिरोधी कर्म शत्रुओं को बलात् रोककर या दूर कर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, हो रहे हैं [विदेह क्षेत्र से] और होंगे। आत्मानुभव होने पर शुद्ध परिणति द्वारा आत्मा में आने वाली कार्माणवर्गणाओं में कर्मत्व (फल देने की योग्यता) की उत्पत्ति नहीं होने देना संवर कहलाता है। वह संवर शुद्धात्मोपलब्धि होने पर होता है। शुद्धात्मोलब्धि परपदार्थ विषयक ऊहापोह के दूर करने से उत्पन्न होती है। परपदार्थमयी परिणति का नाश निज और पर के भेद विज्ञान से होता है, भेद विज्ञान भी अपने और पर के निश्चित स्वरूप के ज्ञान के बिना नहीं होता। इसलिये हे मोक्षाभिलाषी आत्मा! रागद्वेष मोहात्मक इस दुखद

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शक्तिसंवरावाप्तये सफलार्थाणां याथात्म्यमवमन्तव्यम् त्वं किल शाश्वतिकोपयोगस्वरूपो जीवाह्वयोऽर्थः दृश्यमानंच सर्वं जगन्नित्यानुपयोगमयम् । कथं न्वत्यन्तविरुद्धलक्षणाविमौ स्वपरावर्थौ परस्पर प्रवेष्टुमर्हतः । नहि जीवद्रव्यं कथमपि कदाचिदप्यनुपयोगलक्षणं भवितुमर्हति । अजीवश्च वा कश्चिन्न कथमपि कदाचिदुपयोगलक्षणा भवितुमर्हति । अथवास्ताम् दूर एव तावदत्यन्तविरोधिनामाभासत्वेनापि शून्यानामम जीवानां जीवेन साकं साङ्कर्यम्, यतो हि

संसार का त्याग कराने में सफल शक्ति धारण करने वाले संवर की प्राप्ति के लिये समस्त चराचर पदार्थों की असलियत को जानना आवश्यक है। निश्चय ही तू शाश्वतिक उपयोग वाला ज्ञातादृष्टा जीव द्रव्य है और तुझ से भिन्न दृष्टिगोचर यह जड़ात्मक सम्पूर्ण जगत् नित्य उपयोग से रहित है। अतएव अत्यन्त विपरीत स्वभाव वाले ये दोनों [निज और पर] पदार्थ एक दूसरे में प्रवेश करने में या एकमेक (अभिन्न) होने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? जीव द्रव्य कभी भी किसी भी प्रकार ज्ञान दर्शनात्मक उपयोग से रहित नहीं हो सकता। इसी प्रकार कोई भी अचेतन पदार्थ कभी भी किसी भी कारणवश अपने अचेतन स्वरूप को छोड़ उपयोग (ज्ञानदर्शनात्मक) लक्षण नहीं बन सकता अथवा जीव से अत्यन्त भिन्न आभास मात्र से भी उपयोग शून्य अजीव पदार्थ का जीव के साथ एकता तो बहुत दूर की बात है, आत्मा में एक क्षेत्रा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवेष्युपलभमानानां परनिमित्तोत्पाद्यत्वेन वर्तमानानां चिदाभासानां क्रोधादीनां जीवस्वभावस्य च संज्ञानस्य परस्परतो विभिन्नत्वमननुप्रवेशित्वं च स्वानुभवगर्भैर्युक्तियुक्तं वरीवर्त्यत एव। तथा च सति सिद्धमेवैतत् न कश्चिदर्थः स्वद्रव्यगुणलेशावन्यस्मिन्नर्थे स्थापयितुं क्षमः, तेन मन्यस्व न कश्चित्पुद्गलः स्वस्पर्शरसगंधवर्णान्त्वयि तनोतुं वा समर्थः, ततश्चेमाबुद्धिं मुञ्च। यदस्य पुद्गलस्य रसामास्वादयामि त्वं किल विषयविषयि सन्निपातजमैन्द्रियज्ञानमेवानुभवसि सर्वस्य वस्तुनः परिणामानां तेनैव तेनैवानुभूयमानत्वात्। पवनेरणनिमित्तत्वं प्राप्योद्भूयमानानामपि

वगाही रूप से पाये जाने वाले, परहेतुक, चेतनवत् प्रतीत होने वाले क्रोधादिक परिणाम और जीव का असाधारण स्वभाव उपयोग भी अत्यन्त भिन्न है वे भी एक नहीं हैं। ऐसी प्रतीत निजात्मानुभव से ही होती है। वस्तुस्थिति ऐसी होने पर यह स्वयं सिद्ध है कि कोई भी पदार्थ अपने द्रव्यात्मक या गुणात्मक भाग का जरा भी अंश अपने से भिन्न पर पदार्थ में पहुंचा सकने या मिला सकने में समर्थ नहीं है। इसलिये कोई भी पुद्गल अपने स्पर्श, रस, गंध वर्ण को तेरे में स्थापन करने के लिये समर्थ नहीं है तू ऐसा दृढ़ निश्चय कर। इसलिये मैं इस पुद्गल का रसास्वादन करता हूं, स्पर्श करता हूं, इस प्रकार की धारणा को छोड़। इस तरह तू केवल विषय [पदार्थ] और विषयी [आत्मा] के सन्निपात [संसर्ग] से उत्पन्न केवल ऐन्द्रियक ज्ञान का ही अनुभव करता है क्योंकि समस्त वस्तु समूह के रसरूप आदि अनेक परिवर्तनों का उस इन्द्रिय (घ्राणचक्षु आदि) द्वारा अनुभव (ज्ञान) होता है। वायु के चलने के वेग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पयोनिधेः कल्लोलानामनुभवनं किल पयोनिधावेव भवति पयोनिधिर्वा कल्लोलाननुभवितुं शक्यः, न कथमपि पवनस्यानुभावकत्वं भवितुमायति । एतस्मिन् स्थिते निर्विसंवादमदः– हे आत्मन् त्वं स्वगुणपर्यायानेव व्याप्यव्यापकतया भाव्यभावकतया च कर्तुमनुभवितुं च शक्नोपि तस्मात्परद्रव्यगुणपर्याकरणोपभोगयोरहङ्कारं मिथ्यात्वानुबंधिन विमुञ्च तथा सत्येव सर्वात्मसंपत्करः संवरो भविष्यति, ततश्च प्राग्बद्धकर्मनिर्जरणं भविष्यति ततश्च सर्वकर्मनिर्जरणान्तरमेव मोक्षो योगिजनैकध्येयोऽविनश्वरो भविष्यति । निर्जरणं हि कर्मत्वापन्नानां पुद्गलानां कमत्वाभवनलक्षणो

निमित्त पाकर उत्पन्न हुई समुद्र की लहरों का अनुभव समुद्र में ही होता है अथवा समुद्र ही उनका वेदन कर सकता है किन्तु वायु को इस प्रकार का अनुभव कभी नहीं होता ऐसी बात होने पर यह निर्विवाद है कि हे आत्मन् तू व्याप्य व्यापक सम्बन्ध और भाव्य भावक सम्बन्ध से अपने गुण [सहभाविस्वरूप] और पर्यायों (क्रमभाविपरिणमन) का अनुभवन (वेदन) करने में समर्थ हो सकता है इसलिये मिथ्यात्व से पैदा होने वाले परद्रव्यों के गुणपर्याय को उत्पन्न करने विषयक एवं उसके उपभोग विषयक अहङ्कार को छोड़ । तेरी ऐसी परिणति होने पर सम्पूर्ण सुख सम्पत्ति को करने वाला संवर अवश्य होगा उसके होने पर पूर्व संचित कर्मजाल का निर्जरण (दूर होना) होगा और उसके बाद निःशेष कर्मों का नाश होने से साधु योगिपुरुषों का लक्ष्य भूत अविनाशी अनन्त मोक्ष भी निश्चय से अवश्य होगा । कर्मरूप परिणत हुए पुद्गलों का अपने स्वभावाभाव (फलदानशक्त्यभाव) स्वरूप जो वियोग होता है उसे निर्जरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वियोगः स च प्रतिसमयमेव सर्वेषां संसारिणां बोभवित्येव किन्तु तदा तन्निमित्तोद्भूतसुखदुःखादिपरिणतौ स्वपरयोर-विवेकेन परम् स्वात्मानं जनतः रागं कुर्वाणा बहुशो बहूनि कर्माणि बध्नन्तस्तद्विपाकप्रभवरागद्वेषमूलाकुलतालक्षण-संसारगर्भाः सन्तः चेक्लिश्यन्ते। ज्ञानिनस्तु सकलानामु-दितानामुदीर्णानामुदयाभाविक्षयसमभिज्ञातानां कर्मणां निर्जरणावसरे स्वरसत एवात्मज्ञानसद्भावत्वेन रागवियोगा-न्नवानि कर्माण्यबध्नन्तः पूर्वबद्धकर्माणि यथोचितं निर्जरन्तो यथोक्तलक्षणात्संसाराच्च्यवमाना निर्विकल्पविज्ञानघनपरम

कहते हैं, और इस प्रकार का वियोग प्रत्येक संसारी प्राणी के प्रति समय हुआ करता हैं। किन्तु उस समय उस वियोग से उत्पन्न सुख दुःखात्मक परिणमन होने पर (कई कर्म सुखविपाकी व अनेक दुख विपाकी होकर खिरते हैं) निज पर का विवेक न होने से परपदार्थ को अपना मान उनमें अनुराग करते हुए अनेक तरह से नाना प्रकार के कर्मों को बांधते हुए उनके विपाक (फलोदय) से जन्य रागद्वेषहेतुक आकुलतामय इस संसार समुद्र में डूब कर अतिशय कर बार-बार दुखी होते हैं। ज्ञानी पुरुष तो अपना फल देकर और बिना फल दिये ही झड़ जाने वाले सम्पूर्ण कर्मों के निर्जरा काल में आत्मलीन और आत्मज्ञानासक्त होते हुए भी आत्मज्ञान का सद्भाव ~~अभाव~~ होने से नवीन कर्मों का बन्ध नहीं करते हुए पूर्वोपार्जित कर्मों की यथोचित निर्जरा करते हुए ऊपर कहे गये लक्षण वाले संसार से च्युत होते हुए निर्विकल्प विज्ञानमय परम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ब्रह्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानाचरणलक्षणनिश्चयरत्नत्रयसाध्यसाम्यसुरससम्पूर्णशिवसौख्यं शाश्वतमनुभवन्ति । अज्ञानिनश्च सकलानामुदितानामुदीर्णानां कर्मणां सविपाकनिर्जरणावसरेऽनादिमोहमदाविष्टतया ज्ञानावरणादिकर्मास्रवणनिमित्तपरपरणतिहेतोर्नवानि कर्माणि बध्नन्तो रागद्वेषमोहलक्षणसंसारात्पृथग भवितुमशक्ताः संकल्पविकल्पकलितकल्पनामूलातत्वश्रद्धानज्ञानाचरणविभावभाव्यविषमताविषव्याप्तं चातुर्गत्यदुःखसंदोहमनुभवन्ति । अतः फलित मेतत्-सममोजन्तुः कर्मणा वध्यते निर्ममश्च कर्मणोमुच्यते ततो हे आत्मन्

ब्रह्म निज आत्मा का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान आचरण हैं लक्षण जिसके निश्चय रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र) से सिद्ध होने वाले समतारस से व्याप्त अविनश्वर मोक्ष सुख का आनन्द लेते हैं। अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति अविपाक निर्जरा से होती है। अज्ञानी जीव उदय को प्राप्त होकर फल दे चुकने वाले व बिना फल दिये नष्ट हो जाने वाले कर्मों की निर्जरा के समय अनादि काल से मोह मद से आविष्ट व उन्मत्त होने के कारण ज्ञानावरणादि कर्मों के आश्रव के हेतुभूत परपदार्थों में आसक्ति से नये-नये कर्मों का बन्ध करते हुए, रागद्वेष मोहमय संसार में असमर्थ नाना प्रकार के अच्छे बुरे विकल्पों से उत्पन्न होने वाले मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचरित्र रूप परिणति से जन्य विषमता विष से व्याप्त इस संसार में चतुर्गति सम्बन्धी दुख समूह को भोगते हैं। सारांश यह है कि ममता मोह सहित जीव कर्मों से बंधता है और मोहरहित आत्मा कर्म से छूटता है इसलिये हे आत्मा! यदि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्षार्थी चेत्सकलयत्नविधानेन निर्ममत्वं यथा स्यात्तथा चेतयत्व । अन्यथा स्वयंसदरूपेऽनादिनिधनेऽस्मिंल्लोके बंभ्रमंश्चातुर्गत्यदु:खानि यथाऽद्ययावत्सोढवांस्तथा सहिस्यसे । सम्यक्स्वरूपानवबोधने हि कल्पान्तस्थेषु नवसु ग्रैवेयकेष्वप्य हमिन्द्रपदं संप्राप्यापि संसारं नातिक्रमन्ते । न हि तैरद्यापि दक्षिणनाकेन्द्रसौधर्मेशशचीलोकपाललौकान्तिकानुदिशानुत्तराहमिन्द्रजन्म न लब्धम् तद्विहायोर्द्ध्व-लोके सर्वत्रोत्पद्यापि मिथ्याभिनिवेशसद्भावे निर्ममत्वभावनोत्थसमतासान्निध्यभवमनाकुलतालक्षणं स्वरसं सुरसं केवलज्ञप्तिलक्षणेन्द्रपरिणतिस्वाद्यं ज्ञानमयभावाभावन

तुझे मोक्ष की इच्छा है तो तू अपनी समस्त चित् अचित् साधन सामग्री से जिस प्रकार सम्भव हो उस प्रकार निर्मोह या ममत्व रहित बनने की कोशिश कर और निर्मोह भाव का चिन्तवन कर। नहीं तो अनादि अनन्त इस संसार में चतुर्गतियों में अनन्त बार भ्रमण करते हुए आज तक जितने और जिस जिस प्रकार के दु:ख भोगे हैं उन्हें उसी प्रकार आगे भी भोगेगा।

निजस्वरूप का सम्यग्ज्ञान न होने से स्वर्गों के अन्त में स्थित नव ग्रै-वैयकों में अहमिन्द्र पदको पाकर भी जीव इस संसारका अतिक्रमण (उल्लंघन, उच्छेदन) नहीं कर पाते। उन जीवों ने अब तक भी दक्षिण स्वर्ग के इन्द्र सौधर्म इन्द्राणी लोकपाल, लौकान्तिक देव और नव अनुदिश विमानों एवं पंचानुत्तर विमानों में अहमिन्द्र पद को प्राप्त नहीं किया उसके अतिरिक्त ऊर्द्ध्व लोक में भी सर्वत्र ऊपर उत्पन्न होकर आज भी मिथ्याभिनिवेश (मिथ्यात्व) के रहने से निर्ममत्व भाव जन्य समता भाव की सहयोगिनी अनाकुलता स्वरूप सुख को जो केवल ज्ञान दर्शनमय आत्मा के द्वारा ही भोगा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रसयितुं न शक्यते। ये किल भवभोगविरक्ता महाभागा परेणाजायमानत्वेन स्वतः सिद्धतया चाचलां शाश्वतीं गतिं सिषिधुः सेधिष्यन्ति विदेहक्षेत्रोद्भवाश्चाद्यापि सेधन्ति, तदेषु किल सत्यार्थतत्त्वश्रद्धानज्ञानव्रताचरणरूपव्यवहारिकरत्नत्रयसंपाद्यसकलपरभावविविक्तात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानाचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयमयात्मस्वभावलक्षणस्य धर्मस्य महिमा। धर्मोऽयं स्वोपासकानन्तरापि मनोवचःकायप्रवृत्ति विविधाभ्युदयाव्ययशर्मभिः संयोजयति। धर्मः किल द्रव्यापरनामवस्तुस्वभावः द्रव्याणि च षट् तेषु धर्माधर्माकाशकालपुद्गलनामानि पञ्चाचेतनानि जीवद्रव्यं च चेतनम्।

जाता है, अपनी अज्ञानता के कारण नहीं भोग पा रहे हैं। जो भी संसार भोग से विरक्त उत्तम होनहार वाले जीव, परपदार्थ से उत्पन्न न होने से और स्वचतुष्टय से ही सिद्ध होने से अविनश्वर सिद्ध गति को प्राप्त हुए हैं आगे सिद्ध होंगे तथा वर्तमान में विदेह क्षेत्रों में होकर मोक्ष को जा रहे हैं सो वह जीवादि यथार्थ श्रद्धान भूत व्यवहार सम्यग्दर्शन उनके यथार्थ ज्ञान स्वरूप व्यवहार सम्यग्ज्ञान तथा व्रताचाररूप व्यवहार सम्यक चारित्र, इन तीनों की एकता रूप व्यवहार रत्नत्रय के अभ्यास से क्रमशः उत्पन्न, व्यवहार के लेश से रहित परम विशुद्ध केवल अपनी आत्मा के श्रद्धान, ज्ञान और उसी में रमण रूप निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र समुहात्मक निश्चय रत्नत्रय धर्म की महिमा है। यह धर्म अपने उपासकों को मन वचन काय की प्रवृत्ति के बिना भी इहिलौकिक विविध अभ्युदय एवं अविनाशी सुखों का संयोग कराता है। द्रव्यपर्यायवाची वस्तु के स्वभाव का नाम धर्म है। द्रव्य छह हैं। उनमें धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये पांच अचेतन हैं केवल जीवद्रव्य चेतन है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चेतनद्रव्यस्यैव हि स्वभावविभावजदुःखाभावदुःख चेतकत्वशक्तिमत्त्वेन कल्याणविषये परमार्थसुखसाधकस्वभावग्राह्यतोपदेशविषयास्पदत्वम् । तस्य च स्वभावो ज्ञायकभावः । यदायमात्मा परोपाधिनिमित्तजौ रागद्वेषौ स्वप्रज्ञागुणेन व्यावर्त्यं त्वं ज्ञानमात्रं कुर्वन् स्वात्मनि निवसन्नास्ते तदा से क्लेशमूलरागद्वेषविभावाभावात् सकलाकुलता रहितत्वेनानन्तशर्मसुधागारा भवति । लोकेऽस्मिन् खलुयेषां मनोज्ञभोगधनपरिवारमित्रावाप्तिलक्षणानि संकल्पमात्ररमणीयानि सुखानि कल्प्यन्ते स सर्वःधर्म स्यैव प्रसादः । धर्मांशे सत्यप्यवशिष्टशुभरागविपाकस्य प्रसाद इति भावः ।

चेतन द्रव्य ही स्वभाव और विभाव से पैदा होने वाले सुख दुख के विषय विचार करने की शक्ति रखता है अतएव वह ही परमार्थ सुख का साधन स्वभाव को ग्रहण करने विषयक उपदेश का पात्र है । उस चेतन द्रव्य का स्वभाव ज्ञायकपना जानना है । जिस समय यह आत्मा परोपाधि जन्य रागद्वेष को अपने बुद्धि बल से छोड़कर स्वभावभूत ज्ञान को करता हुआ अपनी आत्मा में लीन होता है उस समय निखिल दुखों के हेतुभूत रागद्वेषादि विकारों का अभाव हो जाने से समस्त आकुलताओं से रहित हो अनन्त सुख का भंडार बन जाता है । इस संसार में जिन लोगों के विचारमात्र से मनोरम लगने वाले, मनमोहक धनपरिवार मित्रादि के रूप में सांसारिक सुखों को सत्ता मानी जाती है सो यह सब भी धर्म का ही प्रसाद है । धर्म का अंश होने पर भी बचे हुए शुभ राग के फल का प्रसाद हैं यह भाव है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तैरपि प्रागकामनिर्जरणाद्यभ्युपायैः समीचीनतायाः दृढ़ताया वालाभावान्निवृत्तिप्रापणाशक्तैरप्रकर्षताप्राप्ता धर्मो विहितः। दृश्यते किल कश्चिल्लक्षपतिगृह उत्पन्न एव लक्षपतिपुत्रः कथ्यते, न हि तेन कश्चिदपीह श्रमो वित्तोपार्जनाय विहितः वित्ताधिकारी च समस्त्येव। ततः सिद्धं कल्पनाकलितकलसांसारिकसुखावाप्तावपि धर्मस्य श्रेयः। धर्मश्चात्मस्वभाव एव, आत्मस्वभावश्च ज्ञायकभावस्ततो मोहादिदोषशून्यः शुद्धो ज्ञायकभावो धर्मस्तस्य च यैर्यैर्निर्वतिगर्भैः कृत्यैस्वस्थापनं भवात तानि सकुशलकार्याणि धर्मशब्देनोपचार्यन्ते ज्ञायकत्वप्रयोजकत्वात्।

उन लोगों ने भी उच्च कोटि की पारिणामिक विशुद्धि एवं दृढ़ता के अभाव से, मोक्ष प्राप्त कराने में असमर्थ अकामनिर्जरा बालसंयमादि रूप उपायों द्वारा पहिले भव में व्यावहारिक मध्यम दर्जे का धर्म पालन ही किया है जिसका परिणाम वर्तमान सुख है। लोक में लखपति का पुत्र होते ही लखपति कहलाता है, उसने लक्षाधीश बनने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया किन्तु उस सम्पत्ति का अधिकारी वह अवश्य है। इसमे यह सिद्ध है कि कल्पना से बना है सर्वस्व जिसका ऐसे सांसारिक सुख की प्राप्ति में भी श्रेय पूर्वोपार्जित पुण्यात्मक धर्म को ही है। धर्म आत्मा का स्वभाव है, आत्मा का स्वभाव जानना देखना है, इसलिये मोहादि दोषों से शून्य शुद्ध ज्ञायक स्वभाव धर्म है और उस धर्मका निवृत्ति मूलक (त्यागपरक) जिन जिन उपायों द्वारा अवस्थान अथवा पोषण, वृद्धि स्थिरता होती है वे सब सत्कृत्य भी धर्म नाम से व्यवहार में लाये जाते हैं, क्योंकि वे ज्ञायक स्वभाव की प्राप्ति में प्रयोजनीय हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुंसो विशुद्धिरपि धर्मः शुद्धज्ञायकत्वप्रयोजकत्वात् उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्यदशलक्षणात्मकोऽपि धर्मः शुद्धज्ञायकत्वप्रयोजकत्वात्। यतः विशुद्धिः किल रागद्वेषनिवृत्तिस्तस्यां च सत्यां स्वभाववत्वेन शाश्वतं स्थीयमानस्य ज्ञानस्वभावस्योपाध्यसंसर्गतया शुद्धतैवावसीयत, स च शुद्धो ज्ञानमात्रो भाव आत्मनः स्वभावस्ततः सिद्ध एवात्मनः स्वभावो धर्मः। तथा चात्मानात्मनौ यथावस्थितौ तथा प्रतीतिः सम्यग्दर्शन तथावगमः सम्यग्ज्ञानम् तदेव सम्यक् श्रद्धाय विज्ञायात्मस्वभावे चरण चारित्रम्।

जीव की विशुद्धि भी धर्म है ज्ञायक स्वरूप की प्राप्ति में कारण होने से। उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य दशलक्षणात्मक प्रवृत्ति भी धर्म है निजज्ञायक स्वरूप की प्रयोजकता होने से। क्योंकि रागद्वेष का त्याग ही विशुद्धि है, उस विशुद्धि के होने पर सत्य स्वभाव वाला होने से सर्वदा रहने वाले ज्ञान स्वभाव की अन्य वैभाविक परिणामों का संसर्ग न होने से शुद्धता ही प्रमाणित होती है, और वह शुद्ध ज्ञानात्मक भाव आत्मा का निज स्वरूप है अतएव यह स्वतः सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभाव ही धर्म है।

इस प्रकार जीव और अजीव अथवा चेतन, अचेतन जिस रूप में स्थित हैं उनकी उसी रूप में प्रतीति [श्रद्धान] होना सम्यग्दर्शन है, उसी रूप में उनका ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान और ऐसे श्रद्धान एवं ज्ञान के अनुरूप ही आत्मस्वभाव में स्थिति होना सम्यक् चरित्र है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मस्वभावश्च ज्ञायकभावस्ततः सिद्ध एवात्मस्वभावा धर्मः तथा चोत्तमक्षमा क्रोधव्यावृत्तिस्तस्यां सत्यां स्वभाववत्वेन शाश्वत स्थीयमानस्य ज्ञानस्वभावस्योपाध्यसंसर्गतया शुद्धतैवावसीयये स च शुद्धा ज्ञानमात्रा भावः आत्मनः स्वभावस्ततः सिद्ध एवात्मस्वभावो धर्मः। तथैव च मानमायालोभासत्यासंयमेच्छानिरोधलक्षणेषूत्तममार्दवार्जवशौचसंयमतपोगुणेषु सत्सूपाधिव्यावृत्तेस्तस्य ज्ञानभावस्य शुद्धतैवावसीयते स च शुद्धा ज्ञानमात्रो भाव आत्मनः स्वभावस्ततः सिद्ध एवात्मस्वभावो धर्मः। तथा च परिग्रहान्व्यावृत्तिपरिणामस्त्यागस्तस्मिन्परिणामेऽप्युपाधिव्यावृत्तेस्तस्य ज्ञानस्वभावस्य शुद्धतैवावसीयते स च ज्ञान मात्रो भाव आत्मनः स्वभावस्ततः सिद्ध एवात्मस्वभावो धर्मः।

और वह आत्मस्वभाव ज्ञायक भाव ही तो है इसलिये सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभाव धर्म है। अपरंच—उत्तमक्षमा क्रोध के अभाव [निरास] को कहते हैं क्रोध की निवृत्ति होने पर स्वभाव होने से निरन्तर रहने वाले ज्ञान स्वभाव की उपाधि का संसर्ग न होने से शुद्धता ही निश्चित है और वह शुद्ध ज्ञान मात्र आत्मा का स्वभाव ही तो है इससे सिद्ध है कि आत्मा का स्वभाव धर्म है। उसी प्रकार मान माया लोभ असत्य असंयम और इच्छा के त्याग रूप उत्तम मार्दव आर्जव, शौच, सत्य, संयम तपोमय गुणों के होने पर उपाधि नाश होने से उस ज्ञान भाव की शुद्धता ही प्रगट होती है और वह शुद्ध ज्ञान आत्मा का स्वभाव है इसलिये यह सिद्ध हुआ कि आत्म स्वभाव ही धर्म है। परिग्रह से दूर रहने की भावना रखना त्याग है। उसके होने पर परोपाधियों का त्याग हो जाने से उस ज्ञान स्वभाव की शुद्धता ही साबित होती है और वह शुद्ध ज्ञान मात्र आत्मा का स्वभाव है, इस कारण यह सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभाव का नाम धर्म है।

Version 1

तथाकिञ्चन्येऽपि ममान्यत्किञ्चनापि नास्तीति परिणामे परद्रव्यावृत्तेर्ज्ञानस्य शुद्धतैवेति सिद्ध आत्मस्वभावो धर्मः। तथा ब्रह्मचर्येऽपि यदा किलात्मा ब्रह्मणि स्वात्मनि शुद्धे ज्ञायकभावे चरति तदाऽन्यदोषात्यन्तदूरीभूतत्वात् स्वात्मस्वभावमेव साधितवानिति तत्रापि सिद्ध आत्मस्वभावो धर्मः। हे आत्मन्! आत्मस्वभावो हि नान्यस्मादर्थाल्लभ्यते यो हि यस्य स्वः स एव तस्य स्वामीति सुप्रसिद्धत्वात् निश्चयधर्मसाधननिमित्तमात्रा हि व्यवहारधर्मो यद्यात्मस्वभावश्रद्धानज्ञानाचरणेष्वात्मन एवाज्ञानपरिणतिसद्भावेन निमित्तं न भवेत्तर्हि स धर्मसंज्ञामुपचरितत्वेनापि न लभते।

तथा इस संसार में मेरा कुछ भी नहीं है, इस प्रकार के ममताभावरूप आकिंचन्य धर्म के होने पर पर पदार्थों के सम्पर्क का अभाव होने से ज्ञान की शुद्धता ही होती है इससे भी यही सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभाव ही धर्म है। तथा आनन्दमय शुद्ध निज स्वभाव में रमणरूप ब्रह्मचर्य के होने पर तत्सम्बन्धी उत्तर समस्त दोषों से नितान्त दूर हो जाने से आत्मा निजस्वरूप को ही सिद्ध करता है प्राप्त होता है, इससे भी यह परिणाम निकाला कि आत्मस्वभाव का नाम ही धर्म है। हे आत्मन् आत्मस्वभाव निश्चय ही किसी दूसरे की सहायता से प्राप्त नहीं किया जाता है क्योंकि जो जिसका स्व [अपना] है उसका स्वामी वही होता है ऐसा भले प्रकार सिद्ध है। निश्चय धर्म का साधन मात्र व्यवहार धर्म, यदि आत्मस्वभाव के श्रद्धा व ज्ञान आचरण में आत्मा की ही अज्ञान परिणति के कारण निमित्त नहीं हो तो वह उपचार से भी धर्म संज्ञा को नहीं प्राप्त कर सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ततः केवलं व्यवहारधर्मं एव मा मुह्यस्व ज्ञानविक्षेपमूलौ रागद्वेषो व्यावर्तयन्नेव संतोषं मन्यस्व। यदि सर्वेष्वर्थेषु रागबुद्धिं विहाय स्वात्मानमेवानुभविष्यसि तदैवासन्नमुक्तिको भविष्यसि। रागः किल पुण्येऽपि वर्जनीयो वर्तते यतो हि पुण्यफल सांसारिकवैभावावाप्तिः। यदि केनचित्पुण्यं याचितं संसार एव याचितः सिद्धः। किञ्च पुण्यरागः किल वैभवे इच्छा, स च तीव्रकषायः, तीव्रकषाये च पुण्यबंधोऽपि न भवति। इति पुण्यरागस्य स्वार्थक्रियाकारित्वाभावादत्यन्तहेयत्वं संसारप्रयोजकत्वाच्च पापबंधस्येव पुण्यबंधस्याप्यनिष्टत्वं च।

इस लिये केवल व्यवहार धर्म में ही मत भूल। अपने ज्ञान के अवरोधक रागद्वेष को त्यागता हुआ ही सन्तोष मान। जब समस्त पर पदार्थों में अनुराग बुद्धि को छोड़ आत्म मात्र का अनुभव करेगा तभी मुक्ति का समीपवर्ती तू बन सकेगा। पुण्य विषयक राग छोड़ना चाहिये क्योंकि सांसारिक नाना प्रकार के सुख वैभवकी प्राप्ति रूप पुण्यफल को किसी ने चाहा तो उसने संसार ही मांगा है यह स्वयं सिद्ध है। फिर पुण्यानुराग का अर्थ होता है वैंभवों की अभिलाषा, और अभिलाषा का दूसरा नाम है तीव्रकषाय, तथा तीव्रकषाय की सत्ता में पुण्य बंध होता नहीं।

इस प्रकार पुण्यराग को अभीष्ट पूर्ण दाता न होने से अत्यन्त हेय समझना चाहिये, तथा संसार का कारण होने से पापबंध के समान इसे भी अनिष्टकारी, बुरा करने वाला मानना चाहिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ततः परमात्मनो वीतरागतागुणेऽनुरागं विधेहि। स एव शरणम्। न हि विरागानुरागस्य रागत्वमापद्यते तस्य विरागत्वप्रयोजकत्वात् विरागत्वसंवर्द्धकत्वात् स्वरसतः एव विरागांशत्वेन परिणतस्य महात्मन एव विरागानुरागस्योत्पद्यमानत्वात्। मनुष्यभवस्यैतस्मिन् क्रियमाण एव सफलता। स्पर्शरसगंधरूपशब्दभोगस्तु पशुनामपि वरीवृत्यते। अतः भो आत्मन् धर्ममये ब्रह्मस्वभावे ब्रह्मस्वभावमये धर्मे रन्तुं बद्धकक्षो भवः। जगति किल सुवर्णधनधान्यादिसंपदः शेमुषीकलालब्धप्रतिष्ठा पार्थिकसंपदश्च मुहुर्मुहुः प्रापिथ, किन्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररत्नत्रयात्मकबोधिर्भेदविज्ञान भावनासमुत्थवैराग्यप्रकर्षसमुद्भूतरागद्वेषमान्द्यमूला समाधिर्भवहेतुकशुभाशुभपरिणामनिरोधजा

इस लिये परमात्मा वीतरागता स्वरूप गुण में अनुराग कर वही शरण है। वीतरागता में अनुराग करने वाले के सरागता का दोष नहीं आता क्योंकि वह वीतरागता के लिये है [संसार के लिये नहीं] वीतरागता को बढ़ाने वाला है। स्वयं ही वीतराग दशा को प्राप्त हुए महात्मा की ही मनुष्यभव की सफलता इसी वीतरागता के प्राप्त करने पर है अन्यथा, रूप रस, गन्ध स्पर्श शब्द पर्यायात्मक पुद्गलों का उपभोग तो पशुओं के भी बार बार निरन्तर हुआ करता है। इस लिये हे आत्मन्! धर्ममय निज स्वभाव में अथवा निज स्वभावरूप धर्म में रमण करने के लिये कमर कस ले। इस संसार में तूने स्वर्णधन धान्य आदि सम्पदा बुद्धि बल से प्राप्त सम्मान पद प्रतिष्ठा, तथा इतर भौतिक सुख सामग्री बार-बार प्राप्त की है किन्तु सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र रूप बोधि, भेद विज्ञानमयी भावना से उत्पन्न जो वैराग्योत्कर्ष उससे पैदा हुई राग द्वेष की मन्दता तज्जन्य समाधि, संसार मूलक शुभाशुभ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणामशुद्धिष्टंकोत्कीर्णशुद्धज्ञायकस्वभावमयपरिणतिस्यात्मोपलब्धिः कदाचिदपि न लब्धेति शिवसौख्यातुलसंपत्साधिकाया बोधेरेव दुर्लभत्वं न वैषयिकसुखसाधनानामतः। सद्दृष्टिबोधाचरणेषु सततं यतमानो मिथ्यादृगवगमचरणमलं रागद्वेषमोहलक्षणं जगज्जेतुं बद्धकक्षो भव। तथा प्रयतमानो देहापकारकसम्प्रयोगे कथं न्वात्महानिं मन्यसे। आत्मनो हानिः किल विशुद्धिहानावास्ते। अपरंचैतन्निश्चितं जानीहि यज्जीवस्योपकारकं समस्तित द्देहस्यापकारकम्, यच्च वपुष उपकारकं तज्जीवस्यापकारकम्। यद्यपि सूक्ष्मदृष्टया व्याप्तिरियं दूषितोऽपि त्यत्तथापि

परिणामों के निरोधसे उत्पन्न हुई परिणाम शुद्धि, और टंकोत्कीर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वभाव मयी परिणति स्वरूप आत्मोपलब्धि कभी भी नहीं प्राप्त की, इस लिये मोक्ष सुख रूप अतुल सम्पत्ति को सिद्ध करने वाली बोधि की ही दुर्लभता है, विषय वासना पूरक सुख साधनों की नहीं। इस लिये सम्यग्दर्शज्ञान चारित्र में निरन्तर प्रयत्न करता हुआ मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र हेतुक रागद्वेष मोह-लक्षण संसार को जीतने के लिये कमर कस के तैयार होओ। आत्मस्वभाव रूप धर्म को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होता हुआ शरीर को हानिकारक प्रयोगों से आत्मा की हानि क्यों मानता है। आत्मा की हानि अति निश्चय से विशुद्धि का ह्रास होने पर होती है। फिर यह निश्चित है कि शरीर और आत्मा बिल्कुल विपरीत गुणधर्म वाले हैं इस लिये जो क्रिया जीव के लिये लिये हितकारी है वह शरीर को हानि पहुंचाने वाली और जो शरीर को हितकारी है वह आत्मा के प्रतिकूल होती है। यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि से

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कषायकवलीकृताय विषयानुज्झितुं बिभ्यते प्राणिने व्याप्तिर्हितसंपादिकैषेति वृष्यरसस्वादप्रभृतिविषयेभ्यश्चेतो व्यावर्त्य गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयेषु स्वात्मस्वरूपावलोकने, सिद्धात्मस्वरूपचिन्तने च शेमुषीं सशक्तां विधेहि। न ह्येते क्षुधादयस्तव स्वरूपसिद्धा एते किल मोहोदयसाहाय्यसप्राप्तौदण्डये नासद्वेद्योदयेन जायमाना व्याधय एव भोजनादयश्च क्षणोपशमनावधानस्यापाया, एव संकल्परमणीया। आत्मबलाभिव्यञ्जनाभाव एवैते व्याकुलत्वमुत्पादयितुं शक्नुवन्ति। साधूनां किल विहितैक द्वित्रिचतुर्मासोपवासनियमानां रत्नत्रयसाधनसहावनरभवं

यह व्याप्ति दूषित भी हो तो भी कषाय से ग्रस्त विषयों के त्यागने में भयभीत प्राणी के लिये यह व्याप्ति हितका संपादन करने वाली है ही अतः आत्मकल्याण चाहने वाले जिज्ञासु मुमुक्षु जनों को वृष्य, गरिष्ठ भोजन का करना आदि विषयों से चित्तकों हटाकर गुप्ति समिति धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजयों में तथा निजस्वरूपका अवलोकन करने एव सिद्धात्मस्वरूप का चिन्तन करने में अपनी बुद्धि को लगाये क्षुधा तृषा आदि तेरे स्वभाव नहीं हैं, अपितु मोहनीय कर्म की सहायता से बल पाये हुए असातावेदनीय के उदयसे पैदा हुई व्याधियां ही हैं। भोजन पान आदि को क्षण भर के लिये उपशमन कर देने के उपाय मात्र हैं। आत्मबल के प्रगट न होने पर ही ये भूख प्यास आदि की इच्छा ये व्याकुलता पैदा कर सकती हैं। देखो, एक दो तीन चार मास तक उपवास धारण करने नरभव को रत्नत्रय प्राप्तिका वातावरण मानने वाले मंद कषायवान हो, उपेक्षा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विज्ञाय मंदरागतो विहिताहारचर्याणामन्तरायकर्मोदयवशेन कतिपयदिवसमासप्रभृतयलब्धाहाराणामभिव्यक्तास्थिनशाजालदेहानाम प्यात्मानुष्ठाननिष्ठतया, विषादक्लेशो दूर एवास्ताम् कश्चिदसाधारणः परमानन्दो बद्धत एव । क्षुधाद्यनुभवो हि कर्मविपाकनिमित्तत्वं प्राप्य जायमानानैमित्तकाविकृता भावश्चिदाभासाः यथोदितनिर्जरणविधानविधानेनैकवारमपि सत्त्वतः क्षयमुपमताः शाश्वतं व्यावर्तन्ते। एतदेव च परमात्मनः परमत्वं यत्क्लेशानुबन्धिन औदयिका भावास्तत्र शुद्धे ब्रह्मणि प्रकर्षप्राप्तस्वच्छतासद्भावत्वेन रागद्वेषमोहमलीमसतानु लब्धेः कदाचिदप्युत्पत्तुं नार्हन्ति।

बुद्धि पूर्वक आहारचर्या करने वाले, अन्तराय कर्म के उदय से कुछ एक दिन, मास पर्यन्त आहार प्राप्त नहीं कर सकने से मांस रक्तादि के अभाव में हड्डियों तथा शिराओं (नसों) के समूह रूप शरीर धारण करने वाले साधुओं के आत्मसाधना में अचिन्तत्यनिष्ठा (श्रद्धा) होने से विषाद या क्लेश तो दूर रहा उलटा कोई अवर्णनीय असाधारण आनन्दका उदय-होता है तथा वह उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। हर्षोदय के निमित्त से पैदा हुए भूख प्यासादिके अनुभव आत्मस्वभाव के समस्त प्रतीत होने वाले बिकार हैं और अपने निमित्त भूत कर्म की निर्जरा हो जाने से एक बार भी नाश हो जाने पर हमेशा के लिये दूर हो जाते हैं। परमात्मा की यही तो परमात्मता (श्रेष्टता) है कि आत्मा में अत्यन्त निर्दोषता के आजानेपर रागद्वेष मोहादि पापों का सर्वथा अभाव हो जाने से क्लेश को पैदा करने वाले औदयिक भूख प्यासादि बाधायें फिर कभी भी पैदा नही हो पाती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत एव चावरणक्षयाद्विश्वं विश्वपर्याय युगपज्जानन्नपि निजानन्दरसमग्नः सकलसाधुसंदोहैः संस्मर्यते, स्मरत उपासनामास्ते तादृशा भवन्ति। हन्त जयतु जयतु सततं कल्याणमयपरमेश्वरानुस्मरणम् यत्प्रसादान्निरवधिशर्मनिर्भरमुक्तिमोदरावरोधकमोहकपाटौ भक्तिकुञ्जिकयोद्घाट्य भव्यजनाः स्वस्वरूपावाप्तिमयमोक्षे निवसन्तोऽनवरत शाश्वतं साहजिकमनुपम सुखमनुभवन्ति। तत्किल नर्ते मोक्षात्, स च नान्तरा रत्नत्रयम् तच्च, न बिना ध्यानं तच्च न बिना मनस्थैर्यं भवितुमर्हति मनः स्थैर्यञ्चेष्टनिष्टरत्यरतिपरिणामविरहाद्भवति।

इसी लिये कर्म रूप आवरण के सभी वरण नाश हो जाने से उसकी भूत भविष्य, वर्तमान सम्बन्धी अन्तपर्यायों सहित अखिल विश्व को एक साथ जानता हुआ भी आत्मानन्द रस में डूबा हुआ यह परमात्मा, साधु समूह का ध्येय (आराध्य ध्यान करने योग्य) होता है और स्मरण या ध्यान करने वाले वे साधु भी उसी के समान बन जाते हैं। वह कल्याण कारक परमात्मा का स्मरण ध्यान जयवन्त हो। जिसके प्रसाद से भव्यजन, अनन्त अविनाशी सुख सम्पन्न मोक्ष मन्दिर के द्वार को रोकने वाले मोहरूपी कपाटों को भक्ति कुंजी या धक्के से खोलकर निजस्वरूपावाप्ति रूप मोक्ष में निवास करते हुए निरन्तर नित्य अनुपमेय स्वाभाविक सुख को भोगते हैं। यह सुखावाप्ति, मोक्ष के बिना संभव नहीं मोक्ष, रत्नत्रयके बिना नहीं मिलता, रत्नत्रय बिना ध्यान के, ध्यान बिना मन की स्थिरता के नहीं हो सकता और मन की स्थिरता इष्ट अनिष्ट विषयक रागद्वेषात्मक परिणामों का अभाव होने पर होती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तं च विधातुं तावदक्षमः पुरुषो यावत्स्थैर्यधैर्यविध्वंसनप्रवणविविधपरीषहाणां विजयेऽस्याविफलः पुरुषकारो न स्यात्। अतः भो आत्मन् कथं विभेषोः परीषहोपनिपाते। भावरङ्गे प्रोद्यम्य इमान् शत्रून् विजित्य शाश्वतिक परोपाधिजकल्मषताविविक्तं स्वाधीनं ज्ञानसाम्राज्यमनुभव। एषां मूलतो मन्थने न तव कापि न्यूनता। त्वयीयती शक्तिर्यद्वै शद्येन गणनया वर्णयितुं व्यक्ततच्छक्तिकोऽपि तां पूर्णतयाऽनुभवन्नपि न क्षमः, वर्णने तस्या अनन्तत्वस्याघातप्रसङ्गात्। अदुःखसमुद्भोवितं ज्ञानं दुःखे समुपस्थिते विनश्यति तस्मादात्मानं मूढात्मभिर्मतैर्दुःखैर्भावयेत् संयोजयेत

सो उस रागद्वेषका अभाव करके के लिये जीव तब तक समर्थ नहीं होता जब तक तक उसकी स्थिरता धैर्य को नाश करने वाले अनेक प्रकार के परीषह को जीतने में इसका पुरुषार्थ सफल न हो जाये। इसलिये हे आत्मन् परीषहों के आनेपर क्यों डरता है। भावयुद्ध में प्रयत्न कर इन शत्रुओं को जीतकर परनिमित्त से पैदा होने वाली कलुषता से रहित, नित्य, स्वाधीनज्ञान साम्राज्य के सुख को भोग। इन कर्म शत्रुओं के मूलोच्छेदन करने में तेरी आत्मा में किसी प्रकार की दुर्बलता भी कभी नहीं है। तेरे भी इतनी अनन्त शक्ति है कि जिनके इस शक्ति की व्यक्ति हो गई है और जो उस को पूर्णतया अनुभव करते हुए भी सकल परमात्मा इसकी गणना करने में या वर्णन करने में क्षम नहीं है क्योंकि यदि उसका पूर्णतया वर्णन या गणना करली जाती है तो उसकी अनन्तताका व्याधात होता है। अस्तु आरम्भ से प्राप्त किया हुआ ज्ञान, दुःख परीषह के उपस्थित होने पर नष्ट हो सकता है इस लिये मूढ आत्माओं के द्वारा माने गये दुःखों से अभ्यासी ज्ञानी अपने को संयुक्त करे

Version 1

बहिर्धीभिर्मतं सुखं दुःखं कल्पनाकलितकलमेव । कुतः इतिचेदुच्यते-दुःख हि किलाकुल्यं तद्धि वहिर्द्रव्येषु स्वात्मा-नमात्मीयत्वं वा मन्यमानास्तेषामारम्भे रक्षणे वियोगे परभावत्वेन मनस्तृप्त्यभावात स्वेच्छानुकूलं परिणत्यभा-वात् कुर्युः । किमत्र ज्ञानिन्यापतित स्यात् स्वविविक्तभाव द्रव्येषु स्वात्मबुद्धेरात्मीयत्व बुद्धेश्चामानात् । सुखं चापि वहिरर्थेषु स्वात्मानमात्मीयत्वं मन्यमानानां जन्तूनां कदा-चित् वहिरर्थाणां स्वपुण्योदयात् प्राप्तौ परभावत्वेऽपि स्व-कीयत्वाध्यासत्वेन कायनिमित्तजसंतापहरत्वात् । स्यात्कि-मत्र ज्ञानिन्यापतितं स्यात्स्वविविक्तभावद्रव्येषु स्वात्मबु-द्धेरात्मीयत्वबुद्धेश्चाभावात् ।

अर्थात् कायक्लेश नामक तप बहिर्बुद्धि वाले बहिरात्मा जीवों के द्वारा कल्पित सुख, दुख, कल्पना मात्र ही है। क्योंकि यदि ऐसा पूछा जाय तो सुनो आकुलता का नाम दुख है। वह आकुलता बाह्य पदार्थों में आत्मा या आत्मीय बुद्धि रखने वाले लोगों को परपदार्थों के अर्जन, रक्षण और नाश होने में मनस्तृप्ति के अभाव से या परपदार्थों की स्वेच्छानुकूल परिणति न होने से होती है। ज्ञानी पुरुष के इससे क्या आया गया क्योंकि वह तो निज से भिन्न परपदार्थों में आत्म या ममत्व बुद्धि रखता नहीं। इसी प्रकार बाह्य वस्तुओं में स्वात्मत्व अथवा स्वात्मीय बुद्धि ज्ञान वाले लोगों के कदाचित अपने पुण्योदय की प्राप्ति होने पर परपदार्थों की अपने शरीर के संताप हरणादि रूप जो स्वेच्छानुकूल परिणति होती है उसे सुख माना गया है। किन्तु यहां भी ज्ञानी पुरुष को क्या मिला या गया। यहां भी निज से भिन्न परपदार्थों में उसकी आत्म या आत्मीय कल्पना नहीं होती।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानिनां किल रत्यरतिभावास्पृष्ठार्थविबोधने तोषः समुत्पद्यते रत्यरतिभावसंसक्तार्थविबोधने च ऐषः समुत्पद्यते। किञ्च किञ्चिदपि कुर्वतान्तेषामेष एवैको व्यवसायो यत्किञ्चदपि कुर्वतो मे विपरीताभिनिवेशस्तेन च सहितां प्रवृत्तिर्मा भवेत्। चारित्रमोहवैचित्र्यवशनोदीर्यमाणेषु रत्यरतिपरिणामेषु महासंतापो भवति वियोगबुद्धिरप्युत्कृष्टा जायते। एतदेव कारणं यद्विषयोपभोगेऽपिज्ञानिना मिथ्यात्वहुंडकषंडासप्राप्तककाक्षस्थावरातापसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियनरकायुगत्यानुपूर्व्यानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिदुर्भगदुःस्वरानादेयवज्रनाराचनाराचार्द्धनाराचकीलकसंहननन्यग्रोधपरि-

---

ज्ञानी जीवों में रत्यरति आदि भावों के सम्पर्क से रहित स्वात्म संवेदन में सन्तोष होता है और रागद्वेष या प्रीति अप्रीति रूप के विषयभूत पदार्थों में संवेदन में तोष या रोष पैदा होता है। बाह्य रूप में कुछ भी करते हुए ज्ञानी पुरुषों की अंतरंग में यही भावना रहती है कि प्रगट रूप से कुछ भी करते हुए मेरी अन्तरंग आत्मा में पर्ययात्मक या विपरीत श्रद्धान ज्ञान न पैदा हो जाय। चारित्र मोहनीय के निमित्त उदय होने वाले रागद्वेषात्मक परिणामों से उन्हें महान् संताप होता है और विरक्ति भावना भी उत्तरोत्तर पुष्ट होती जाती है। यही कारण है कि ज्ञानियों के विषय सेवन होने पर भी मिथ्यात्व, हुडंक, नपुंसक, असप्राप्तारसृपाटिका, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, साधारण अपर्यप्ति, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकायु, नरकगति गत्यानूपूर्वी, अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, वज्रनाराच, नाराच, अर्ध-नाराच, कीलकसंहनन, न्यग्रोध परिमंडल,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मंडलस्वातिवामनकुब्जकसंस्थानदुर्गमनस्त्रीनोचैर्गोत्रतिर्यग्गतिगत्यानुपूर्व्यायुषामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धो न भवति। ततः सिद्ध रागकल्मषतावर्जितं ज्ञानं न बन्धहेतुः प्रत्युत संवरनिर्जराभिधेयौ मोक्षोपायौ विदधाति। अतस्तादृग्ज्ञानसंपादने सर्वमपि पुण्यं निर्विकल्पस्वात्मोत्थज्ञानादिगुणरूपपरमब्रह्मणि हुत्वा सकलबहिरर्थप्रवृत्तिव्यावृत्या स्वपुरुषकारममोघ विधेहि। तथा प्रयत्ने समुपपतितानां परीषहाणां विजये सोत्साहो धन्यं मन्यमानश्च प्रभवतात् यन्मुक्तिकन्याकरग्रहणावसरेऽस्मिन्नरभवे मुक्तये प्रयतमानस्य मम परीक्षाकाल आयातः।

स्वाति, वामन, कुब्जक सस्थान, दुर्गमन स्त्री, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु इन ४१ प्रकृतियों का बंधन नहीं होता। इससे यह सिद्ध हुआ है कि रागरंलियों से रहित ज्ञान बन्धका हेतु नहीं होता प्रत्युत भी क्षर्क प्रधान कारण संबर और निर्जरा का निमित्त बनता है। इसलिये उपर्युक्त ज्ञान प्राप्त करने के लिये, समस्त पुण्य को निर्विकल्प स्वात्म संवेदन जन्य ज्ञानादि गुण स्वरूप परमब्रह्म में हवन कर सम्पूर्ण बाह्य पदार्थों में प्रवृत्ति का अभाव होने से अपने अव्यर्थ पुरुषार्थ को कर। उस प्रकार के प्रयास काल में उपस्थित हुए परीषहों को जीतने में उत्साही होता हुआ अपने को इस लिये धन्यमान कि मुक्ति कन्या से विवाह करने का मिला है सुअवसर जिसमें ऐसे इस मनुष्यभव में मुक्ति के लिये उद्यम करते हुए मेरी परीक्षा का समय आ गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नूनमद्येनां परीक्षामुत्तीर्यानादिसंबद्धकर्मारीन् हत्वाऽव्ययं सुखमनाकुलमयमनुभविष्यामि। अथवैतया रीत्या परीषहविजये प्रयतमानः पश्चान्निर्विकल्प एव भूयात्तदाऽऽत्मैव ध्येयो ध्याताऽऽप्यात्मैव स्यात्। तथा सकलमभीष्टमविघ्नतः क्षण एव सिद्ध्यति। नूनं सिद्धमेतत् नर्ते चरित्रास्पिद्धः भगवद्भक्तिर्हि वीरोचितचारित्रम्भे समुत्साहिका तदुत्साहविरोधकमोहपटलभेदनासाधारणप्रभावा साक्षान्मुक्तिसाधनञ्च स्वरूपसमावेशनम्। यः स्वरूपसमावेशाधिकारी स एव शिवसौख्यं लभते।

निःसन्देह मैं आज इस कठिन परीक्षा को पास कर अनादि काल में बंधे हुए कर्म शत्रुओं को नाश कर निराकुलतामय अविनाशी सुख का अनुभव करूंगा, उसे प्राप्त करूंगा। अथवा इस तरह परीषहों को जीतने में प्रयत्न करता हुआ मैं समस्त विकल्प जाल से रहित उस दशा को प्राप्त करूंगा, जहां ध्येय [ध्यान करने योग्य] और ध्याता [ध्यान करने वाले] का भेद नहीं रह जाता अर्थात् यह आत्मा ही ध्येय अथवा ध्याता हो जायगा। ऐसा होने पर अभीष्ट जो मोक्ष है वह निर्बाध रूप से क्षण भर में ही सिद्ध हो जायगा। इस तरह यह भली भांति सिद्ध हो गया कि चारित्र के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। एवं वीर, धैर्यवान् पुरुषों द्वारा धारण किये जाने योग्य चारित्र के प्रारम्भ में भगवान् की भक्ति महान् उत्साह प्रदान करती है। तथा उस उत्साह को क्षीण करने वाले मोहनीय कर्म के परदे को फाड़ने में अचिन्त्य माहात्म्य रखने वाला और मोक्ष का साक्षात् साधन निजात्मस्वरूप में रमण करता है। जो अपने आपमें मग्न होने की सामर्थ्य रखता है वही मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

केवलं परमेष्ठिनो गुणान् गायन्तोऽधिकेनाधिकं स्वर्ग-सुख लभेरन् यथा हि कस्याश्चित्तनयस्य विवाहावसरे वर्तनेनाहूता दास्य विविधं गानं कुर्वन्ति ताः केवलंवर्तना-धिकारिण्यो न हि कथंचिदपि बधूस्वामित्वसुखं लब्धुम-र्हन्ति, माता च तथाऽऽडम्बर करणमकुर्वत्यपि तत्सुख लभ। नात्र परमेष्ठिगुणानुवादो निषिध्यते स तु स्वरूप-समावेशावस्थायाः प्राग्नितान्तमावश्यक एव परं तस्य फलं स्वरूपसमावेशः स ध्येया लभ्यश्च।

आत्मा ज्ञान के अभाव में केवल परमेष्ठी का गुणगान करने वाले अधिक से अधिक स्वर्ग सुख को प्राप्त कर लेंगे। जिस प्रकार किसी के पुत्र के विवाहावसर पर बुलाई गई दासियां [ठोलनी या मांडनी] अनेक मंगल गान हासविलास करती हुई केवल बतासों की हकदार होती हैं किसी भी तरह नववधू के स्वामित्व जन्य सुख को प्राप्त नहीं कर पातीं। उसका अधिकार गायनादिक आडंबर को नहीं करने वाली पुत्र की माता को ही होता है। उसी तरह मोक्षसुखानुभव का सहज अधिकार आत्मासक्त पुरुष को ही होता है। इसका आशय यहां परमेष्ठियों के गुणानुवाद का निषेध करना बिल्कुल नहीं है। वह तो स्वरूप समाधि के पूर्व अभ्यास दशा में नितान्त आवश्यक है ही किन्तु उस गुणानुवाद का फल स्वरूपलीनता ही है यही ध्येय होना चाहिए।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को हि नाम बुधः फलमवाच्छन् केवलमुपवन सिञ्चन् कष्टमेव विदध्यात् । भो आत्मन् मनुजजन्म दुर्लभम् तत्रापि शिवसौख्यसंपत्करं जिनवृषं दुर्लभतमं सम्प्राप्य घोरदुःखानुबंधिषु विषयेष्वभिमुह्य बलादज्ञानीभूय स्वर्णावसरं मुधा यापयाम । सतीं दृष्टिं समासादयतो भोगेभ्यो विरतस्य आत्मानुष्ठाननिष्ठतया न कश्चिदपि क्लेशः प्रत्युत परमानंदो जायत एव । यथा कश्चिद्धर्मफलमुग्धतयाऽनशनव्रत विधाय स्वकीयां दृष्टि देहान्तःप्रविष्टां विधाय चेक्लिश्यते चेक्लिश्यताम् किन्तु योऽनशनं व्रतं विधाय सतीं दृष्टि समाश्रयति

ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो फल चखने की इच्छा न रखता हुआ केवल उपवन को सींचता हुआ व्यर्थ कष्ट उठायेगा । हे आत्मन् मनुष्य जन्म पाना दुर्लभ है उसमें भी शिव सुख प्रदान करने वाला जिन धर्म तो अत्यन्त दुर्लभ है । सो ऐसे मनुष्य जन्म और जिनधर्म को अनायास प्राप्त अनन्त घोर दुःखों को करने वाले विषयों में भूलकर विवश हो अज्ञानी होता हुआ व्यर्थ ही इस सुवर्णावसर को खो रहा है । असार और भोगों से विरत हुए आत्मानुगामिनी समीचीन दृष्टि को प्राप्त करने में तत्पर आत्मसाधन में ही एक मात्र निष्ठा रखने वाले जीव के किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं होता अपितु महान् अभूतपूर्व आनन्द आता है । जिस प्रकार कोई व्यक्ति धर्मफल के लोभ से उपवास धारण कर अपनी भावना को शरीर के विषय में ही फंसाकर व्यर्थ ही अतिशयरूप से दुखी होता है तो होओ किन्तु जो उपवास व्रत को धारण कर समीचीन शुद्ध भावना का आश्रय लेकर ऐसी भावना करता है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यदद्य धन्योऽयमेतावत्कालप्रभृति विषयकषायेभ्यः पृथग्भूय विषयकषायकल्मषितपरिणामपरिणम्यविधिबन्धरहितः । सन् वर्ते तस्मात् सर्वबहिरर्थेष्विष्टानिष्टबुद्धिं संत्यज्य सांसारिकसर्वसुखविलक्षणमत्यभित्येन्द्रासंभविसाम्यसुधारसं पातुं प्रयते । नूनमेतादृशी दृष्टिरशनतो विरतस्य महात्मनो लोकोत्तरानन्दमुत्पादयति । तेनैवानन्दतेजसात्मा घाति-कर्माणि हत्वा ज्ञानगर्भरितत्रिजगद्व्याप्नोति । तथा च आत्मनो हितं हि सुखम्, आत्मा च स्वयं सुखस्वभावः तच्च सुखमात्मनः कैवल्यावस्थायां, कैवल्यं च चातुर्गतिकेषु

मैं आज धन्य हूं जो आज तक अपने से सम्बन्धित विषयकषाओं से पृथक् हो विषयकषाओं से कलुषित हुए परिणामों से निर्मित कर्म बन्धन से रहित हुआ हूं। इसलिये समस्त बाह्य पदार्थों में इष्टानिष्ट बुद्धि का परित्याग कर संसार के समस्त सभी प्रकार के सुखों से विलक्षण चक्रवर्ती और देवेन्द्रों को भी दुर्लभ समतामृत का पान करने के लिये प्रयत्न करता हूं। निश्चय ही ऐसी दृष्टि अशन भोजन से विरक्त उपवास करने वाले महात्मा के अलौ-किक आनन्द प्रदान करती है। उसी आनन्दात्मक अपूर्व तेज से आत्माचार घातियां कर्मों को नाश कर ज्ञानमय होता हुआ तीनों लोकों में व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार आत्मा का हित ही सच्चा सुख है, आत्मा स्वयं सुख स्वभाव है, वह सुख आत्मा की कैवल्यावस्था (केवल ज्ञानमय दशा) में होता है कैवल्यावस्था चतुर्गतियों के जीवों में मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है, मनुष्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मनुष्य एव प्राप्तुं समर्थः, मनुष्यदेहसाधकश्चाहारः अतो यावताल्पेनाहारेण रत्नत्रयसाधनस्वाध्यायवदनाविधानक्षमताविधातो न स्यात्तावदूनोदरं भुञ्जानस्य मे स्वरूपच्युतस्य स्वरूपावाप्तिश्चिराय भवत्वात दृष्टिमादधानोऽनाकुलसौख्यभाग्यति ।

(अपूर्ण)

शरीर का आधार आहार है, इसलिये जितने थोड़े आहार से, रत्नत्रयप्राप्ति के हेतुभूत स्वाध्याय, वदना आदि नित्य कर्मों की सामर्थ्य का विघात न हो उतने आवश्यकता से कम (भर पेट नहीं) आहार को करते हुए स्वरूप से भ्रष्ट मेरे चिरकाल के लिये स्वरूप प्राप्ति होओ, ऐसी भावना रखता हुआ जीव आकुलता रहित सुखों को भोगने वाला होता है ।

(अपूर्ण)

इस प्रकार अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा व्रतप्रतिमा की अवस्था में सन् १९५५ में विरचित दृष्टि नामक निबन्ध अपूर्ण समाप्त हुआ ।

—: ० :—

Version 1